डा० विश्वनाथप्रसाद

एम० ए०, पी-एच० डी० (लन्दन)

को

सादर

अभिनेता एक नाटक प्रसारित करते हुए
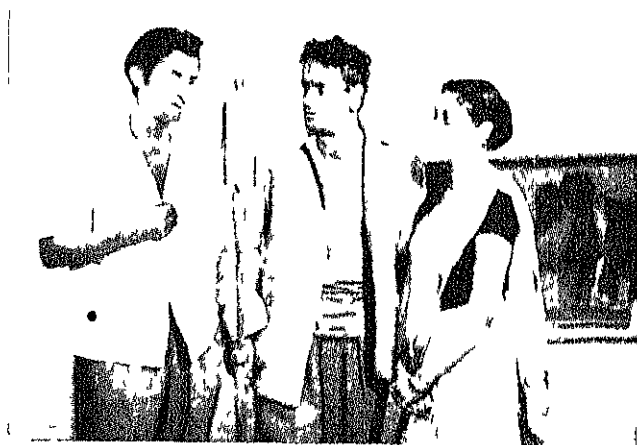
अपनी पार्टीके दो सदस्योंके साथ अभिनेता पृथ्वीराज कपूर एक नाटक प्रसारित कर रहे हैं। पीछे प्रस्तुतकर्त्ताका छोटा कमरा दिखाई पड रहा है।

विषय-सूची

परिशिष्ट

अपनी बात

सन् १९४८ की बात है। पटनामे नया-नया रेडियो-स्टेशन खुला था। अभिव्यक्तिके इस नये माध्यमकी ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। रेडियो-सेट पर अपनी रचना और नाम सुननेकी मनमे तीव्र आकाक्षा जगी। सोचा, नाटक लिखूँ, लेकिन सहसा समझ न सका कि रेडियो-नाटक लिखने का ढग क्या है। हिन्दीमे कोई पुस्तक न थी, जिससे इस दिशामे सहायता मिलती, और अपने यहाँके अन्य लेखकोंके लिए भी यह माध्यम नया ही था। फलत मुझे इस विषय पर लिखित अग्रेजी पुस्तकोंकी शरण लेनी पडी। मै समझता हूँ, इतने दिनो बाद भी स्थितिमें परिवर्त्तन नही हुआ है। अभी भी हिन्दीमे कोई ऐसी पुस्तक नही है, जो रेडियो-नाटक लिखने के आकाक्षी व्यक्तियोको उचित मार्ग बतला सके। अनेक लेखकोंसे बात-चीतके प्रसगमे भी मैने यह अनुभव किया है कि वे रेडियो-नाटक लिखना चाहते है, पर पथ-प्रदर्शनके अभावमे नही लिख पाते। यदि हिन्दीमे इस विषय पर कोई पुस्तक होती, तो उन्हे पर्याप्त सहायता मिलती। यह पुस्तक इसी दृष्टिसे लिखी गयी है।

पुस्तकको सब प्रकारसे उपयोगी एव व्यावहारिक बनानेका प्रयत्न किया गया है। अग्रेजीमे इस विषयपर जो उपलब्ध सामग्री है, उसका पूरा उपयोग किया गया है। ऐसा करना उचित भी था, क्योकि अग्रेजीमें रेडियो-नाटककी टेकनीकका काफी विकास हो चुका है। पुस्तकको व्यावहारिक बनानेके लिए मैने लगभग आठ वर्षोंके अपने रेडियो-नाटक-लेखन के अनुभवका भी उपयोग किया है।

तथ्योको स्पष्ट करनेके लिए पुस्तकमे पर्याप्त उदाहरण दिये गये है। कुछ उदाहरणोको एकसे अधिक बार देनेकी आवश्यकता पडी है, पर पुनरुक्तिसे बचनेके लिए ऐसा नही किया गया है, केवल आगे आनेवाले

उदाहरणोका निर्देश कर दिया गया है। गत पाठकोकी सुविधाके लिए यह उल्लेख कर देना उचित ज्ञात होता है कि पृष्ठ ३० मे निर्दिष्ट उदाहरण पृष्ठ १०९ मे और पृष्ठ ३१ मे निर्दिष्ट तीन उदाहरण क्रमश पृष्ठ ८९-९१, ५२ और ९५-९६ मे दिये गये है। इसी प्रकार ३२, ३८, ४१, ५२, ५४ और ५७ पृष्ठोमे निर्दिष्ट उदाहरण क्रमश पृष्ठ ४६, ७७, १०४, ७८, ७८ और ११४-११५ मे देखे जा सकते है। उदाहरण लेखकने अपनी ही रचनाओसे दिये है, जहाँ अन्य किसी लेखककी रचनासे उदाहरण दिया गया है, वहाँ उसका उल्लेख कर दिया गया है।

पाठक रेडियो-नाटकके स्वरूप-विधान एव प्रकारोसे भलीभाँति परिचित हो सकें यह सोचकर मैने परिशिष्टमे अपने दो रेडियो-नाटक, 'सघर्ष' और 'वे अभी भी क्वाँरी है', अपने सपूर्ण रूपमे दे दिये है। मै यह कहनेकी धृष्टता नही करता कि ये नाटक आदर्श है, पर इतना अवश्य है कि ये केवल रेडियोको दृष्टिमे रखकर लिखे गये है, और रेडियो पर सफल रहे हैं। यों तो रेडियो-नाटकका कोई एक निश्चित स्वरूप नही है (उसी तरह, जिस तरह कहानी और उपन्यासका कोई एक निश्चित स्वरूप नही है) वह प्रत्येक लेखककी प्रतिभा और सूझके अनुसार बदलता रहता है, मुझे आशा है कि परिशिष्टके नाटकोंसे पाठकोको रेडियो-नाटकका स्वरूप-विधान समझनेमें सहायता मिलेगी।

नाटक एक सृजनात्मक कृति है, और प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार ही उसकी रचना कर सकता है। कोई पुस्तक वह प्रतिभा नही दे सकती। पर सजनात्मक प्रतिभाके रहते हुए भी साहित्यके कहानी, उपन्यास, नाटक आदिके कला-विधानसे परिचित होना आवश्यक है, तभी सफल कला-कृतियोका निर्माण हो सकेगा। प्रस्तुत पुस्तक उन्ही व्यक्तियोके लिए है, जिनमे नाटकके लिए अपेक्षित प्रतिभा पहलेसे है, और जो रेडियो-नाटकके कला-विधानसे परिचित होना चाहते है।

आशा है, रेडियो-नाटक लिखनेकी इच्छा रखनेवाले व्यक्ति तो इस

पुस्तकसे लाभ उठाएँगे ही, हिन्दीके सामान्य पाठकोमे भी इससे रेडियो-नाटकोंके प्रति अभिरुचि जगेगी ।

जिन पुस्तकोसे मैने सहायता ली है और जिनके उद्धरण मैने पुस्तकमे दिये है, उनके लेखकोके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ ।

आल इडिया-रेडियोके सौजन्यसे स्टूडियोके जो चित्र प्राप्त हुए है, उनके लिए अधिकारियोको धन्यवाद ।

लोकोदय ग्रथमालाके सपादक आदरणीय बन्धु श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन का बहुत आभार मानता हूँ कि इनसे प्रकाशक-जैसा नही, एक अग्रज-जैसा स्नेह एव परामर्श पाता रहा हूँ ।

मैने यह उचित समझा कि प्रस्तुत पुस्तककी प्रस्तावना किसी रेडियो-नाटय-विशेषज्ञसे ही लिखवायी जाय । इस सबधमें मेरे सामने पहला नाम आल इडिया रेडियो दिल्लीके प्रसिद्ध नाटय-निर्देशक श्री एस० एस० एस० ठाकुर (जिन्होने अब तक विभिन्न प्रकारके सैकडों रेडियो-नाटक पढे हैं और प्रोड्यूस किये है, जिन्हे रेडियो-नाटयका सैद्धान्तिक ही नही, व्यावहारिक अनुभव प्राप्त है) का आया, पर मेरे लिए वे बिलकुल अपरिचित थे । अत मैने उनके पास लिखा—"मै सोचता हूँ कि प्रसिद्ध रेडियो-नाट्य-विशेषज्ञोके अनुभवो पर आधारित यह पुस्तक रेडियो-नाट्य-शिल्पसे परिचय प्राप्त करनेकी इच्छा रखने-वालोके लिए उपयोगी होनी चाहिए, पर मै चाहता हूँ कि आप इसे स्वय देख ले कि जिस उद्देश्यसे यह लिखी गयी है, उसकी पूर्ति कहाँतक करेगी, और यदि आप इससे सतुष्ट हो, तभी प्रस्तावना लिखे ।" मुझे प्रसन्नता है कि ठाकुर साहबने प्रस्तावना लिखना स्वीकार किया और अपने व्यस्त जीवनसे कुछ समय निकाल कर प्रस्तावना लिखनेकी जो कृपा की है, इसके लिए हृदयसे उनका हार्दिक आभार स्वीकार करता हूँ ।

पटना —सिद्धनाथकुमार

प्रस्तावना

मुझसे जब इस पुस्तककी प्रस्तावना लिखनेको कहा गया, तो मुझे "लिखना" शब्दसे बडी घबराहट हुई, क्योकि मैने लिखनेका काम बहुत कम किया है। मै तो बोलता हूँ और उससे भी अधिक सुनता हूँ । यह अत्युक्ति न होगी, यदि मै कहूँ कि रेडियो-नाटकसे सबन्धित हर चीजमे बोलने और सुननेकी एक अलग महत्ता है।

वैसे बोलना और सुनना तो किसको नही आता, पर मैने रेडियोमे रहकर यही सीखा है कि ऐसा बोलो, जिसे बहुत-से लोग समझें, जिससे बहुत से लोगोका फायदा हो और बहुत-से लोगोका मनोरजन । सरल, सर्वहित की सरस बात होनी चाहिये ।

रेडियोका आविष्कार मौलिक शब्दकी शक्ति-प्रदर्शनका एक बहुत बडा माध्यम है तो हमे मुखसे बोली हुई बातकी ओर हाथसे लिखी हुई बातकी अपेक्षा अधिक ध्यान देना होगा । शायद ही ऐसा कोई रेडियो-नाटक होगा, जिसकी शैली पर उपर्युक्त कथनको सामने रखकर विचार किया गया हो ।

मुखसे बोली हुई बात ही क्या, अमौखिक, सगीतमय, अथवा सगीत-रहित ध्वनियाँ एक बहुत अच्छे लिखे हुए कथोपकथनसे अधिक प्रभावशाली हो सकती है ।

एक विराम अपने सही स्थान पर, एक पूरे पैराग्राफसे अधिक सार्थक हो सकता है ।

डी० सी० पी० (ड्रामा कन्ट्रोल पैनल) में यह क्षमता है कि वह स्वय ध्वनिके सहारे एक ऐसा चित्र, दृश्य और भाव पेदा कर सकता है, जो एक पूरे पृष्ठ पर लिखे हुए शब्दोसे कहीं अधिक प्रभावोत्पादक होगा।

रेडियो-नाट्य-शिल्प तभी निखरेगा, जब हम रेडियोके असली तत्त्व को ग्रहण कर डी० सी० पी०, अभिनेता, सगीतमय और सगीतरहित ध्वनियाँ, यथास्थान विरामकी सार्थकता आदि अगोंको सामने रखकर रेडियो-नाटककी कल्पना करेंगे ।

श्री सिद्धनाथकुमारजीका यह प्रयास वास्तवमें सराहनीय है । उन्होंने रेडियो-नाट्य-शिल्पकी छोटी-से-छोटी और बडी-से-बडी बातका अच्छा विवेचन किया है ।

आशा है, वह आगे भी इस क्षेत्रकी अनेकानेक और बातें भी जनता तक पहुँचाते रहेगे ।

नई दिल्ली]

—एस० एस० एस० ठाकुर
निर्देशक, आकाशवाणी, दिल्ली

रेडियो—नाट्य-शिल्प

ध्वनि-नाटक या रेडियो-नाटक ?

रेडियो-नाटकका माध्यम हमारे लिए अभी नया है, इसके लिए कोई ऐसा नाम भी निश्चित नही हो सका है, जो उचित एव सर्वमान्य हो। रेडियो-नाटकके कला-विधानपर प्रकाश डालनेके पहले नामकरणके प्रश्नपर विचार कर लेना आवश्यक लगता है। भिन्न-भिन्न विद्वानोने इसे भिन्न-भिन्न नाम दिये हे। डा० रामकुमार वर्माने इसे 'ध्वनि-नाटक' कहा हे ('आजकल', अगस्त १९५१)। प्रो० रामचरण महेन्द्र इसे 'ध्वनि-एकाकी' कहते है ('कल्पना', दिसम्बर १९५२)। अधिक लोगोने इन्ही दोनो नामोके व्यवहार किये है, यो कुछ लोग इसे रेडियो-नाटक भी कहते है। हमे एक-एक करके इन तीनो नामोपर विचार कर लेना चाहिए।

'ध्वनि-नाटक'मे प्रयुक्त 'ध्वनि' शब्द अनेकार्थ हे। 'सक्षिप्त हिंदी-शब्दसागर'मे इसके चार अर्थ दिगे हुए है, जो इस प्रकार है—'१ वह विषय, जिसका ग्रहण श्रवणेन्द्रियसे हो। शब्द। नाद। आवाज। २ शब्दका स्फोट। आवाजकी गूँज। लय। ३ वह काव्य जिसमे वाच्यार्थकी अपेक्षा व्यग्यार्थ अधिक विशेषतावाला हो। ४. आशय। गूढ अर्थ। मतलब।' इसलिए 'ध्वनि-नाटक'से रेडियोसे प्रसारित होनेवाले नाटकका बोध नही होता। यह सत्य हे कि रेडियोसे प्रसारित किय जानेवाले नाटकोमे शब्द, आवाज अथवा ध्वनिकी ही प्रधानता होती है, पर रेडियो-नाटकके सभी उपकरण इसके अन्तर्गत नही आ पाते। सगीत, जो रेडियो-नाटकका एक प्रधान साधन है, की व्यजना 'ध्वनि'से नही होती। सच कहा जाय, तो ध्वनि या आवाज़ (Sound-effect) रेडियो-नाटकका केवल एक उपकरण है। अत-रेडियोसे प्रसारित होनेवाले नाटकको 'ध्वनि-नाटक' कहना उचित नही जँचता।

'ध्वनि-एकाकी' नाम तो रेडियो-नाटकोके ही सबधमे भ्रम उत्पन्न कर देता है। यह भ्रम बहुत लोगोमे हे। लोग समझते हैं कि रेडियोसे

प्रसारित किये जानेवाले नाटक एकाकी नाटकोकी ही श्रेणीके होते है । स्वय डा० रामकुमार वर्माकी इस पक्तिसे यही ध्वनि निकलती है—'रग-मचपर अभिनीत होनेवाले एकाकी नाटकोमे और रेडियो-द्वारा प्रस्तुत एकाकी नाटकोमे बडा भेद है ।' ('आजकल', अगस्त १९५१) पर रेडियो-नाटकोमे अकका प्रश्न ही नही उठता । उनमे आवश्यकतानुसार छोटे-बडे अनेक दृश्य होते हैं, यो कभी-कभी एक ही दृश्यमे समूचा नाटक समाप्त हो जाता है, जैसे स्वय डा० वर्माका 'आँखोका आकाश' है । एकाकी नाटकके लिए यह कहना सत्य है कि '*कार्य-सकलन, काल-सकलन और स्थान-*सकलनकी मर्यादासे उसमें एक सम्पूर्ण कार्य एक ही अवधिमे एक ही स्थानपर होना आवश्यक है ।　　यही एकाकीकारका कौशल है कि बिना समयका विस्तार बढाये और बिना स्थानोको बदले, वह कौतूहलका सचय कर मनोविज्ञानमें क्रान्ति उपस्थित कर दे ।' पर रेडियो-नाटकके सबधमे यह आवश्यक नही है । यो, कुछ रेडियो-नाटकोमे सकलन-त्रयकी रक्षा भले ही की गई हो, पर रेडियो-नाटकका यह कोई सामान्य सिद्धान्त नही है । अन्तमें दिये गये नाटक 'वे अभी भी क्वाँरी है' मे सरलतासे देखा जा सकता है कि उसमे सकलन-त्रयका कोई बधन नही माना गया है, फिर भी प्रसारित होनेपर उसमे काफी प्रभावोत्पादकता रही हे । तात्पर्य यह कि रेडियोके लिए लिखित नाटकको 'ध्वनि-एकाकी' भी नही कहा जा सकता ।

रेडियोसे प्रसारित किये जानेवाले नाटकोके लिए एक ही नाम उचित है—'रेडियो-नाटक' । 'रेडियो' शब्द हिदीके लिए अपना शब्द हो चुका है, सबके लिए यह बोधगम्य भी है । इसके अन्तर्गत रेडियोके लिए लिखित सब प्रकारके नाटक आ जाते है । अत इसी नामका व्यवहार किया जाना चाहिए ।

———

रंगमंच-नाटक और रेडियो-नाटक

रेडियो-नाटक लिखनेके पहले रेडियो-नाटक लिखनेके आकाक्षी लेखकोके मनमे यह बात अच्छी तरह बैठ जानी चाहिए कि रेडियो-नाटक रगमचके नाटकोसे बिल्कुल भिन्न है, दोनोके लिखनेकी प्रणाली अलग-अलग है। रेडियो-नाटकके सबधमे सामान्य धारणा यह है कि वह रगमचके नाटकोका ही एक परिवर्त्तित रूप है। ऐसी धारणा उत्पन्न करनेमे अपने यहाँके प्रसिद्ध लेखकोका भी हाथ है। वे रगमचके लिए लिखे हुए अपने नाटकोमे थोडा परिवर्त्तन कर उन्हे रेडियो-स्टेशनोमे प्रसारित करनेके लिए दे देते हैं, अथवा रेडियोसे प्रसारित नाटकोमे स्थान-स्थानपर रगमचके उपयुक्त प्रतिन्यास लिखकर उन्हे पत्र-पत्रिकाओमे प्रकाशित कराते है। इससे उन्हे आर्थिक दृष्टिसे लाभ अवश्य होता है, पर रेडियो-नाटकके सबधमे सामान्य पाठकोकी धारणा सही नही बन पाती। कुछ लेखक भी ऐसे है, जो स्वय इस धारणाके विश्वासी हैं। उदाहरणके लिए, एक प्रसिद्ध नाटककारके नाटक-सग्रहकी भूमिकामे एक पक्ति इस प्रकार है—'मेरा विश्वास है, जैसे स्टेजके नाटक कुछ हेर-फेरके साथ रेडियोके उपयुक्त बनाये जा सकते हैं, वैसे ही ध्वनि-रूपकोको भी आवश्यकता होनेपर स्टेज-नाटक बनाया जा सकता है।' यह बात कुछ नाटकोके लिए भले ही सही हो, पर जो नाटक रेडियोको ही दृष्टिमे रखकर लिखे जाते हैं, उनपर नही लागू होगी। अन्तमे दिये गये नाटकोको, विशेष रूपसे 'वे अभी भी क्वाँरी हैं' को पढकर आप सोच सकते हैं कि क्या उन्हें रगमचपर प्रदर्शित किया जा सकता है। सच बात यह है कि रेडियो-नाटककी कला एक स्वतन्त्र कला है। उसे जाननेके लिए सबसे पहले हमे समझ लेना चाहिए कि रगमचके नाटकोसे रेडियो-नाटक किन-किन बातोमे भिन्न है।

रगमच-नाटक दृश्य और श्रव्य दोनो है। उसके प्रभावको हम आँख और कान दोनोके द्वारा ग्रहण करते हैं। दृश्य होनेके कारण उसकी अभि-

व्यक्तिके अनेक साधन है। रगमच-नाटकोमे वातावरण एव परिस्थितियो-को सूचित करनेवाले दृश्योका उल्लेख करना पड़ता है। रगमचपर काममे आनेवाली वस्तुओका भी निर्देश रहता है। पात्रोकी रूप-रेखा, अवस्था, शारीरिक गठन, वस्त्र-विन्यास, अस्त्र-शस्त्र, अलकार आदि द्वारा उनके देश, काल एव व्यक्तित्वका परिचय मिलता है। पात्रोके घूमने-फिरने, उठने-बैठने आदि कार्य एव भाव-भगिमा, मुद्रा आदि भी घटनाओ एव भावनाओको प्रकट करनेके बहुत बडे साधन है। फिल्मोमे तो ये साधन बडे ही प्रभावशाली होते है। रेडियो-नाटकोमे इन सभी साधनोका अभाव है। यहाँ इन सबकी पूर्ति श्रव्य साधनोसे ही करनी पडती है। इनके अति-रिक्त रगमच तथा सिनेमाके बहुत-से नाटकोकी शातिमे भी व्यजना होती है। भासके नाटकोके सबधमे एक अग्रेज आलोचकने लिखा है—'*Its silence speaks*' (इसका मौन भी बोलता है)। इसका अनुभव हमें उन फिल्मोको भी देखते समय हमेशा ही होता है, जिनमे बिना किसी कथनोपकथनके कितने चलचित्र आँखोके सामनेसे निकल जाते है। घट-नाओकी गति एव भावनाओकी अभिव्यक्ति वहाँ केवल दृश्यो, पात्रोकी मुद्राओ तथा पृष्ठभूमि-सगीतके द्वारा ही स्पष्ट हो जाती है। रेडियो-नाटक-के लिए यह असभव है, क्योकि इसमे दृश्य साधन हैं ही नही।

रगमचके नाटकोमें और भी अनेक सुविधाएँ है। वहाँ एक ही दृश्यमे रगमचपर कई पात्र आ सकते है, पर दर्शकोको उन्हे पहचाननेमे कोई कठि-नाई नही होगी। दर्शक यह भी हमेशा देखते और समझते रहते हैं कि कौन पात्र कब रगमचसे बाहर गया और कब रगमचपर लौटा। इन क्रियाओको शब्दोमे व्यक्त करनेकी आवश्यकता नही होती। रेडियो-नाटकोमें यदि इन बातोपर ध्यान न दिया जाय, तो श्रोताओके लिए उन्हे समझना ही असभव हो जाय।

एक और दृष्टिसे देखें, तो ज्ञात होगा कि रेडियो-नाटककी कला कितनी कठिन है। लोग रगमचके नाटक देखने अपनी इच्छासे जाते है, पैसे खर्च करते है और तब नाटक देखने बैठते है। चूँकि सब लोग अपने पैसोका पूरा

उपयोग करना चाहते हैं, वे शात होकर नाटक देखनेका प्रयत्न करते है। बीचमें कही कोई शोर-गुल नही होने पाता। यदि दो आदमी आपसमे बाते भी करना चाहते हैं, तो अगल-बगलके लोग उन्हें चुप कर देते है। तात्पर्य यह कि यदि नाटकमें कुछ नीरसता रही, तो भी दर्शक उसे देखते हैं। लेकिन रेडियो-नाटकके श्रोताओके लिए ऐसा कोई बधन नही है। उन्हे नाटक सुनने-के लिए कही जाना नही पडता, पैसा नही खर्च करना पडता, इसलिए नीरसता का थोडा-सा आभास मिलनेपर भी वे रेडियो-सेट बद कर देंगे, अथवा मीटर बदलकर दूसरा कुछ सुनने लगेगे। साथ ही, श्रोताओकी आपसकी बातचीत, बच्चोके शोर-गुल, किसीके आने-जानेकी आवाज, किवाडकी खडखडाहट-जैसी कितनी ही चीजें है, जो बीच-बीचमे श्रोताओका ध्यान भग किया करती हैं। ये ही कारण है कि रेडियो-नाटककारका उत्तरदायित्व बहुत कठिन है। उसे एक क्षणके लिए नीरस नही होना है और अनेक विघ्न-बाधाओके बावजूद अपनी कृतिको सामान्य श्रोताओके लिए भी बोधगम्य बनाना है।

रेडियो-नाटकोकी तुलनामे रगमच-नाटकोको एक और सुविधा प्राप्त है। रगमचके नाटक समूहके लिए लिखे जाते है, रेडियोके नाटक व्यक्तिके लिए। समूहकी प्रतिक्रिया व्यक्तिकी प्रतिक्रियासे भिन्न होती है। समूहमे सवेदन-शक्ति अधिक होती है, वह शीघ्र ही भावावेशमे आ सकता है, उत्ते-जित हो सकता है। यदि किसी करुण दृश्यको देखकर समूहके कुछ व्यक्तियो-की आँखोमे आँसू आ जायँ, तो बहुत सभव है कि दूसरे व्यक्तियोकी आँखे भी भर आएँ। जब लोग समूहमे एक साथ बैठकर रगमचके नाटक देखते है, और पात्रोके राग-विरागोसे प्रभावित होते हैं, तो यह प्रभाव उनकी मुख-मुद्राओपर स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। रगमचके अभिनेता इसे देखते है, उन्हे आभास मिलता है कि वे कहाँ तक दर्शकोको प्रभावित कर सके है। अभिनेता दर्शकोकी प्रतिक्रियासे स्वय प्रभावित होते हें, उन्हे अपने अभि-नयमे अधिक कुशलता बरतनेकी प्रेरणा मिलती हे। लेकिन रेडियोके स्टूडियोमें कोई दर्शक नही होता, सब अभिनेता ही होते हैं, जो या तो एक-दूसरेको देखते है, या अपने हाथमे रखी हुई नाटककी प्रतिसे अपना अश पढते

रहते है । बगलके कमरेमे, शीशेकी खिडकीकी दूसरी तरफ सचालक या प्रस्तुतकर्त्ता (producer) रहता है अवश्य, पर अभिनेता समूहकी प्रतिक्रियासे वचित रह जाते है, उन्हे ज्ञात नही होता कि वे अपने श्रोताओको कहाँ तक प्रभावित कर रहे है। रेडियो-नाटककार इससे यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि जो घटनाएँ समूहको प्रभावित कर सकती है, सभव है, वे व्यक्तिको प्रभावित न करे। इसलिए उसे उन्ही विषयो और घटनाओ पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जिनसे वह अपने व्यक्ति-श्रोताओको प्रभावित करनेमे समर्थ हो सके।

जहाँ रगमच-नाटकोमे इतनी सुविधाएँ हैं, वही उनकी कुछ सीमाएँ भी हैं। उनमे दृश्य-परिवर्त्तन एक समस्या है, जिससे उनमे कमसे कम दृश्य रखनेका प्रयत्न किया जाता है। उनमे न कोई दृश्य बहुत छोटा हो सकता है, न कोई दृश्य बहुत बडा। लेकिन रेडियो-नाटकमे ऐसा कोई बधन नही है। इसमे तीन पक्तियोका भी दृश्य हो सकता है, और सौ पक्तियोका भी। फिल्मोमे तो यह सुविधा और भी अधिक है। उनमे दृश्य-परिवर्त्तन तो पल-पल होता रहता है। दृश्य-परिवर्त्तनकी कठिनाईके कारण रगमच-नाटकके दृश्योमें दूसरे स्थानोकी घटनाओका विवरण सलापमे ही देना पडता है। पर यदि हम आवश्यक समझे, तो रेडियो-नाटकमे दूसरे स्थानो-की घटनाओको भी प्रत्यक्ष रूपमे चित्रित कर सकते हैं।

रगमचमे दूसरी समस्या है पात्रोकी वेश-भूषाकी। यदि कोई पात्र पहले दृश्यमे राजकीय वस्त्राभूषण पहनकर आता है, तो दूसरे दृश्यमें हम उसे युद्धकी वेश-भूषामें नही उपस्थित कर सकते। उसे इतना अवकाश मिलना चाहिए कि वह अपना परिधान बदल सके। रेडियो-नाटकमे ऐसी कोई कठिनाई नही है। रेडियो-अभिनेता अपने साधारण कपडे पहनकर ही अभिनय करता है, वेश-भूषा उसके लिए कोई समस्या नही है। वह लगातार कई दृश्योमे बडी सरलतासे आ सकता है।

रगमच-नाटकोकी एक सीमा यह भी है कि उनमे घटनाओकी गति-शीलता बहुत कम रहती है। ऐसा सभव भी नही है, क्योकि वहाँ दृश्य-

परिवर्त्तन जल्दी-जल्दी नही किया जा सकता। पर रेडियो-नाटकोमे गतिका प्रदर्शन बडी सरलतासे किया जा सकता है। फिल्मोमे तो यह विशेपता सबसे अधिक होती है।

रगमचपर भीड, घुडदौड, हवाई जहाज आदिके दृश्य नही दिखलाये जा सकते, पर रेडियोके लिए यह बहुत ही आसान काम है।

इनके अतिरिक्त रेडियो-नाटककी जो अपनी विशेषताएँ है, उनका उल्लेख अगले अध्यायमें किया गया है। रेडियो-नाटककी सीमाएँ और सुविधाएँ समझ लेनेके बाद हम कह सकेंगे कि रेडियो-नाटककी कला किस प्रकार एक स्वतन्त्र कला है। रेडियो-नाटककार उसकी सीमाएँ समझकर और सुविधाओंका अधिकाधिक उपयोग कर सफल रेडियो-नाटककी रचना कर सकता है।

रेडियो-नाटक : सीमाएँ और संभावनाएँ

जैसा कि पिछले अध्यायमे हम देख चुके है, रेडियो-नाटकके उपकरण बहुत परिमित है, और इसी कारण इसकी कुछ अपनी सीमाएँ है। यह केवल श्रव्य है, श्रव्य-साधनोके द्वारा ही नाटककारको अपनी कृतिका निर्माण करना पडता है। रेडियो-नाटककार जानता है कि कान आँखोका काम नही कर सकते, फिर भी वह सभी दृश्योको अपने श्रव्य साधनोसे उपस्थित करनेका प्रयत्न करता है। बहुत-से ऐसे भी दृश्य हैं, जिन्हे चित्रित करनेमे वह अपनको असमर्थ पाता है। दूसरी बात यह है कि रेडियो-नाटकका समय भी सीमित रहता है। सामान्यत रेडियो-नाटक पद्रह, तीस या पैतालीस मिनट अथवा एक घटेके लिए लिखे जाते हैं। इस सीमित अवधिमे ही नाटककी सभी अवस्थाओको उपस्थित करना पडता है। इन सीमाओके रहते हुए भी रेडियो-नाटककी जो अपनी विशेषताएँ है, वे अन्य नाट्य-स्वरूपो की तुलनामे बडी स्पष्टतासे परिलक्षित होती हैं। फिल्म-नाटक तो अधिक साधन एव शक्ति-सम्पन्न होते है, उनमें ये विशेषताएँ मिल सकती हैं, पर यहाँ ये सामान्य रगमच-नाटकोकी तुलनामे उपस्थित की जा रही हैं।

रेडियोपर फैंटेसी[1] (कल्पना-प्रधान नाटक) बडी स्वाभाविक लगती है। किसी प्रकारके दृश्य, स्थान एव पात्रकी कल्पना इसमे सरलतासे की जा सकती है। इसमे हम असाधारण एव विशाल व्यक्तित्ववाले पात्राकी कल्पना कर सकते है, आजके किसी कलाकारको अनसूया और प्रियवदा-जैसी प्राचीन-कालीन पात्रोसे बातें करते सुन सकते हैं (देखिए—'वे अभी भी क्वाँरी हैं'), पशु-पक्षियोके रूपमे मानव-रूपका परिवर्त्तन देख सकते हैं,

---

१ 'फैंटेसी' की पूरी चर्चा आगे इसी नामके प्रकरणमें की गई है।

तृतीय महायुद्धसे ध्वस्त ससारमे बचे हुए व्यक्तियोकी कहानी सुन सकते हैं।[१] रेडियोपर इस तरहकी बाते अस्वाभाविक नही लगती।

काव्य-नाटकोके लिए रेडियोने बडा अच्छा अवसर प्रदान किया है। रगमच और फिल्म-नाटकोमे पात्रोका काव्यमय सलाप अस्वाभाविक लग सकता है, पर रेडियो-नाटकमे नही। हम लोगोके यहाँ रगमचपर काव्य-नाटकके अभिनयकी कल्पना भी नही की जाती, लेकिन जहाँ रगमचपर काव्य-नाटक होते है, वहाँके अनुभवसे यह बात सिद्ध हो चुकी है। भॉल गिलगुडने लिखा है–"All the valient efforts of the Mercury Theatre havefailed as yet to break down what seems to be an instinctive aversion, on the part of English theatre audiences, from the play in verse In radio there is another and a more cheerful story to tell Since Geoffrey Bridson paved the way with his 'March of the Forty-Five' first produced in the early thirties, the record of the broadcast play in verse has been an increasingly distinguished and interesting one" रेडियो-काव्य-नाटकोकी लोकप्रियता इगलैडमे बढ रही है। हमारे यहाँ भी अब रेडियोके लिए काव्य-नाटक लिखे जा रहे हैं। काव्य-नाटक लिखनेवाले कवियोके लिए आज अनेक सुविधाएँ सम्मुख है। स्वय भॉल गिलगुडके शब्दोमे—'To the modern poet, therefore, who writes to be heard rather than to be read, the radio play in verse offers unrivalled opportunities'

रेडियो-नाटकमे प्रतीकात्मक पात्रोको बडी सरलतासे उपस्थित किया जा सकता है। ये तनिक भी अस्वाभाविक नही लगेगे। 'विकलागोका देश' काव्य-नाटकमे यह कल्पना की गई है कि हमारी वर्त्तमान सामाजिक

१ दे०. 'सृष्टिकी साँझ' काव्य-नाटक।

व्यवस्थामे सभी व्यक्ति विकलाग है, सभी अधे, लँगडे, लूले या बौने है, कोई भी ऐसा व्यक्तित्व नही, जो पूर्ण हो। जिन मनुष्योकी शक्तियोका पूर्ण विकास नही हो पाता, उन्हे विकलाग कहना अनुचित नही है। ऐसे पात्र प्रतीकात्मक है, और इन्हे उक्त नाटकमे बडे स्वाभाविक ढगसे चित्रित किया गया है। प्रारभिक पक्तियाँ इस प्रकार हैं —

(दूरमे 'जिंदगी–कुछ नही' गाते हुए लोगोकी आवाज निकटतर आती है।)

स्त्री– मै सोच रही हूँ,
क्या यह सब !
ये कौन व्यक्ति
जीवनका यह मर्सिया
गा रहे सिसक-सिसक ?

पुरुष– चाहिए तुम्हे तब परिचय कुछ ?
क्या परिचय दूँ !
परिचय ये अपने ही देगे।

(भीड से कुछ फुसफुसाहटकी आवाज आती है)

पुरुष-स्वर १– मै लँगडा हूँ!
स्त्री-स्वर– मै अधी हू!
पुरुष-स्वर २– मै लूला हूँ!
पुरुष-स्वर ३– मै बौना हूँ!
पुरुष-स्वर ४– मै हूँ कुरूप!
सब – हम सब कुरूप!

इन प्रतीकात्मक पात्रोकी बातोसे विकलागोके देशकी कल्पना सार्थक कर दी गई है। इसीसे सबधित एक और बात यही कह दी जाय। 'विकलागोंका देश' विचार-प्रधान नाटक है। पात्रोके माध्यमसे वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थाके सबधमे एक विचार उपस्थित किया गया है। रेडियोमे विचार-प्रधान नाटकोके लिए पर्याप्त सुविधाएँ है। लेखकोकी सुविधाके लिए बी० बी० सी० द्वारा प्रचारित 'Some Notes On

Radio Drama' मे कहा गया है—'There is one dramatic field which can be most profitably exploited by the radio dramatist the play of ideas. Not that the play of action should be devoid of ideas That would be absurd. But the *microphone* offers an extra-ordinarily sympathetic means of expression to the dramatist who has something to say or discuss which he is convinced could be made interesting to an audience of millions.' ऐसे नाटकोमे यह आवश्यक है कि विचार सजीव पात्रो-द्वारा उपस्थित किये जायँ।

रेडियोपर जड पदार्थोका मानवीकरण बहुत स्वाभाविक लगता है। 'लौहदेवता' काव्य-नाटकमे यत्र-युगको 'लौहदेवता'की सज्ञा देकर मानव बना दिया गया है। प्रसरणके समय यत्रो-द्वारा लौहदेवताकी आवाज कुछ गभीर कर दी जाती है, जो बहुत प्रभावपूर्ण एव स्वाभाविक ज्ञात होती है।

रेडियो-नाटकोमें पात्रोका सम्मिलित कथन या समवेत-स्वर (chorus) भी दिया जा सकता है। ऊपर 'विकलागो का देश'से जो उद्धरण दिया गया है, उसमे एक स्थलपर समवेत-स्वरका व्यवहार हुआ है। इससे समूहकी व्यजना होती है। इस प्रकार यदि हम जन-समाजको पात्रके रूपमे उपस्थित करना चाहे, तो आसानीसे कर सकते है। 'लौहदेवता'मे जन-समाज ही पात्र है, व्यक्ति-विशेष नही। उदाहरणके लिए—

स्त्री—इसीलिए आशकित औ,
भयभीत, क्षुब्ध हो,
शरण तुम्हारी आये है हम !

समवेत—लौहदेवता,
शरण तुम्हारी आये है हम !

मनोवैज्ञानिक चित्रणकी पर्याप्त सुविधाएँ भी रेडियो-नाटकमे प्राप्त है। यदि किसी पात्रका अन्तर्द्वन्द्व चित्रित करना हो, तो उसके विरोधमे उसके मनको खडा करके कथनोपकथन करा सकते है। एक उदाहरण 'कहानियोके रेडिओ-रूपान्तर'के प्रसगमे 'गोटेकी टोपी'से दिया गया है। फिल्मोमे ऐसे अवसरोपर पात्रकी प्रतिमूर्त्ति, अथवा दर्पण या जलमे उसके प्रतिबिम्बके साथ पात्रका कथनोपकथन कराया जाता है।

इसके अतिरिक्त रेडियो-नाटकोमे विक्षिप्तावस्थाका भी चित्रण किया जा सकता है। एक उदाहरण 'दोषी कौन ?' नाटकके अतिम भागसे दिया जा रहा है। एक व्यक्ति जीवनके सघर्षोमे पडकर टूट जाता है, विक्षिप्त हो जाता है। वह लोगोकी समझसे बेमतलबकी बाते बोलता है, लेकिन ये बेमतलबकी बाते कही बाहरसे नही आ टपकती, इनका जन्म तो उस व्यक्तिके जीवनसे ही होता है। उसके अवचेतनमें जो कटु स्मृतियाँ छिपी हुई हैं, उन्हीसे प्रेरित होकर वह बेमतलबकी बाते बोलता है। एक उद्धरण नीचे दिया जाता है—

एक आदमी—यहाँ बैठिए उमेश बाबू!
उमेश—यहाँ बैठूँ? (अट्टहास)
(पृष्ठभूमिमें तीव्र सगीत)
उमेश—तो, मुझे इस घरमे स्थान नही मिलेगा?
रघुवीर—मैं लाचार हूँ उमेश!
उमेश—तब मेरे लिए कोई उपाय नही है?
रघुवीर—नही।
(स्मृति-दृश्य समाप्त)
उमेश—(अट्टहास)
एक आदमी—उमेश बाबू, यहाँ आइए!
उमेश—यहाँ आऊँ? —नही आऊँगा, नही आऊँगा, मेरे लिए कोई स्थान नही है। (अट्टहास)
(पृष्ठभूमिमें तीव्र सगीत)

रघुवीर—अभी-अभी हीरालाल और मनोहरप्रसाद आये थे।
उन्होने साफ-साफ कह दिया है कि मैं बिरादरीमे
रहना चाहूँ, तो तुम्हे घरसे न रक्खूँ।

उमेश—लेकिन उनके कहनेसे क्या ?

रघुवीर—नही उमेश, वे गाँवके प्रतिष्ठित व्यक्ति है।

(स्मृति-दृश्य समाप्त)

उमेश—(अट्टहास) नही आऊँगा, नही आऊँगा, तुम सब
प्रतिष्ठित व्यक्ति हो, प्रतिष्ठित! (अट्टहास)

स्वप्न-दृश्य तो रेडियो-नाटकोके लिए बहुत ही आसान है। जिस प्रकार विक्षिप्तावस्थाके प्रदर्शनमे सगीत महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, उसी प्रकार स्वप्न-दृश्यके भी। 'अबपाली'के रेडियो-रूपान्तरमे (आगे 'रेडियो-रूपान्तर' के प्रसगमें) इसका उदाहरण देखा जा सकता है।

समयके बीतनेकी व्यजना जितनी सरलतासे रेडियो-नाटकमे की जा सकती है, उतनी सरलतासे रगमच-नाटकमे नही। इसके लिए भी सगीतका सहारा लिया जाता है। कभी-कभी नैरेशनका भी उपयोग किया जाता है। उदाहरण 'नैरेशन'के प्रसगमे आगे देखा जा सकता है।

रेडियो-नाटकमे काल और स्थानका कोई बन्धन नही है। अतीत और भविष्य, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव, सबकी ओर बडी आसानीसे यात्रा की जा सकती है। 'वे अभी भी क्वाँरी है' के प्रारभिक अशसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि किस प्रकार निस्सीम कालमे यात्रा की जा सकती है। स्थान-परिवर्त्तन भी बडी जल्दी-जल्दी किया जा सकता है। उदाहरण 'अबपाली'के रूपान्तरसे उद्धृत अशमे आगे देखा जा सकता है। ये सुविधाएँ रेडियो-नाटकमे प्राप्त है, इसका अर्थ यह नही कि हमेशा इनका उपयोग किया ही जाय। यहाँ सकलन-त्रयका कोई बन्धन नही है अवश्य, लेकिन इस स्वत-न्त्रताका उपयोग इस प्रकार न हो कि घटनाओकी शृखला टूट जाय, और नाटकीय प्रभावमे किसी प्रकारकी रुकावट आ जाय।

अन्य नाटकोमे घटनाओकी गति आगेकी ओर ही होती है, पर रेडियो-नाटकमे, आवश्यक होनेपर, पात्र पीछे मुडकर अपने अतीतको भी देख सकते

है । इसे अग्रेजीमे 'फ्लैश-बैक' (Flash-back) कहते है । 'नेरेशन'के प्रसगमे आगे 'रग और रूप'से एक उद्धरण दिया गया है, जिसमें माईकेल एजिलो अपनी मृत्युकी घडीमे अतीतकी स्मृतियाँ देख रहा है।

इसके अतिरिक्त रेडियो-नाटकमें किसी भी स्थानका दृश्य उपस्थित किया जा सकता है । इसमें हम स्वर्ग, नरक, आफिस, ट्रेन, युद्ध आदि सब स्थानोको चित्रित कर सकते है।

रगमच-नाटकोकी तुलनामें रेडियो-नाटकोकी एक विशेषता और है। रगमचपर, यदि प्रेम या षड्यत्रका प्रसग हो, तब भी पात्रोको जोरसे बोलना पडता है, जो अस्वाभाविक लगता है। रेडियोपर यह बात नही है। यहाँ जरूरत पडनेपर पात्र धीमीसे धीमी आवाजमे बोल सकते हैं। इससे नाटकमें किसी प्रकारकी अस्वाभाविकता नही आने पाती। स्वगत-कथन भी रेडियोपर बहुत स्वाभाविक लगते है।

ऊपर जो कुछ कहा गया, वही सब कुछ नही है। ये तो सकेत मात्र है । रेडियो-नाटकमे अभी अनेक सभावनाएँ और छिपी हुई है, जिन्हे प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार स्वय खोज निकालेगे । उदाहरणके लिए, रेडियो-नाटकमे चित्र या दृश्य इस प्रकार दिखाया जा सकता है, जैसे हम पेंटिंग देख रहे हो । पेंटिंग या चित्रमे जो व्यक्ति और वस्तुएँ चित्रित होती है और उनकी 'स्थिति' का जो पारस्परिक अनुपात (दूरी या सान्निध्य) होता है, उसे हम उनके या उनसे सबध रखनेवाले स्वरोकी अपेक्षाकृत दूरी या निकटताके द्वारा रेडियो-नाटकमे चित्रित कर सकते है।

रेडियो-नाटकके उपकरण

यह हम देख चुके है कि रगमच, फिल्म और रेडियोके लिए लिखे गये नाटकोमे पर्याप्त अतर है। रगमच और फिल्मके नाटकोमे जो अनेक सुविधाएं प्राप्त है, रेडियो-नाटकोमे उनका नितात अभाव है। रेडियो-नाटकोमे दृश्य-तत्त्व बिल्कुल नही रहते। उनकी कमी श्रव्य साधनोसे पूरी करनी पडती है। ये श्रव्य साधन केवल तीन ही है, जिनका रेडियो-नाटकोमे व्यवहार किया जाता है ——भाषा, ध्वनि-प्रभाव और सगीत। इन तीनोका आधार है ध्वनि। ध्वनि अभिव्यक्तिका बहुत सशक्त साधन है। इसकी अपनी विशेषताए है। इसकी अभिव्यजना-शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि कोई ध्वनि कितने जोरसे और कितने अतरपर उत्पन्न होती है, उसकी गति क्या है, तथा उसमे लयपूर्णता किस मात्रामे है। रेडियो-नाटक-विशेषज्ञ आर्नहाइमने तो कहा है कि ध्वनिकी ये विशेषताएँ या गुण ही सभी श्रव्य कलाओके सृजनात्मक साधन है। यह तो हम अपने प्रतिदिनके जीवनमे ही देखते है कि ध्वनि-परिवर्त्तनके साथ ही शब्दोके अर्थमे भी परिवर्त्तन हो जाता है। एक ही शब्दको भिन्न-भिन्न लहजेमे उच्चरित करके, एक ही शब्द या वाक्यकी कई बार आवृत्ति करके उनसे हर्ष, शोक, स्नेह, घृणा, क्रोध आदि अनेक भावनाओकी अभिव्यक्ति की जा सकती है। यह बात सगीत और ध्वनि-प्रभावोपर भी समान रूपसे लागू है। जो कार्य चित्रकार रगोके द्वारा करता है, वही रेडियो-नाटककार और अभिनेता ध्वनियोके द्वारा। अब हम रेडियो-नाटकके तीनो उपकरणोपर अलग-अलग विचार करते है।

भाषा

भाषा ही रेडियो-नाटकका प्राण है। इसके अभावमें नाट्य-स्वरूप एक पलके लिए भी खडा नही हो सकता। रेडियो-नाटकोका भवन शब्दोपर

ही खडा होता है। शब्दोंके द्वारा ही नाटककारको दृश्य-तत्त्वोकी कमी पूरी करनी पडती है। लेकिन यहाँ नाटककारको शब्दोके श्रव्य स्वरूपपर ही ध्यान देना है, लिखित स्वरूपपर नही। उसे याद रखना है कि शब्द अक्षरोका समूह नहीं, बल्कि एक ध्वनि है। बोलनेपर शब्दोकी जो ध्वनि हम सुनते है, वही रेडियो-नाटककारका साधन है, जिसके द्वारा वह अपनी कला-कृतिकी रचना करता है। भाषाका जन्म शब्दोकी श्रव्य-ध्वनियोसे हुआ है, लेकिन जबसे मुद्रण-यन्त्रका आविष्कार हुआ है, भाषामें शब्दोके लिखित रूपको महत्त्व दिया जाने लगा है। इस सबधमे श्री सोमनाथ चिबने सत्य ही लिखा है—"The written word inculcated among writers the habit of thinking in terms of the sentence and the paragraph It gradually took the writer and the reader away from the meaning of the words, the images and responses each word evokes when it is spoken It encouraged the writing of plays that come out better on the page than on the stage, of poetry which is more concerned with how it is printed than how it is read' (Some Aspects of Broadcasting in India)

तात्पर्य यह कि मुद्रण-यन्त्रके आविष्कारसे लोगोका ध्यान शब्दोके लिखित रूपपर ही अधिक गया, लेकिन रेडियो-नाटकोमे उनका कोई मूल्य नही है। रेडियो-नाटककारके लिए आवश्यक है कि वह श्रव्य शब्दोकी शक्ति पहचाने, यह समझे कि किन शब्दो और वाक्योका प्रभाव श्रोतापर किस प्रकार पडेगा। शब्दोके लिखित और श्रव्य स्वरूपमे क्या अतर है, इसके लिए एक उदाहरण देखिए—

'यदि व्यक्तिमें एक विशिष्ट स्वत्व है—और हमने सिद्ध किया है कि महत्त्वका अश वही है—तब उसमे अनुकूलताकी माँग भी होगी ही, सतोष-

जनक सामाजिक परिवृत्ति न मिलनेकी कसक भी होगी ही—तब क्या फिर हम उसी भोडी अतिव्याप्तिकी ओर लौट आए ?'

इस वाक्यका अर्थ-ग्रहण एक बार पढनेपर सभव नही। इसके लिए हम इसे अनेक बार भी पढ सकते है, इसमे व्यवहृत डैश आदि चिह्नोसे सहायता ले सकते है, लेकिन रेडियोमे ये बाते नही है। वहाँ श्रोता किसी शब्द या वाक्यको एक ही बार सुनता है, वह इच्छा रखते हुए भी उसे दुबारा नही सुन सकता, रेडियोपर बोलनेवाला व्यक्ति उसे इतना अवकाश नही देगा कि वह तनिक रुककर किसी वाक्य या वाक्याशका अर्थ पूरी तरह समझ ले। साथ ही रेडियो-श्रोताके लिए डैश आदि चिह्नोका कोई महत्त्व नही है, उसे तो केवल पढनेवालेके ढगपर निर्भर रहना है।

तात्पर्य यह कि रेडियोमे केवल उन्ही शब्दो और वाक्योका मूल्य है, जो सरलतासे बोले जा सके ओर श्रोता भी जिनका अर्थ-ग्रहण शीघ्र ही बिना किसी आयासके कर ले।

रेडियोके लिए नाटक आदि लिखनेवाले कलाकारोके पास पर्याप्त शब्द-भाडार होना चाहिए। लिखित रूपमे एक ही शब्द दस बार हमारी आँखोके सामने आ सकता है, लेकिन रेडियोपर शब्दोकी आवृत्ति बहुत खटकती है। एक ही शब्दका व्यवहार बार-बार न किया जाय, इसके लिए उस शब्दके पर्यायसे काम लेना चाहिए।

तो, रेडियो-नाटकका प्रमुख श्रव्य साधन है भाषा, जिसका व्यवहार दो रूपोमे किया जाता है—(१) कथनोपकथन या सलापके रूपमे और (२) प्रवक्ताके कथन अथवा नैरेशन (Narration) के रूपमे। अब हम इनपर बारी-बारीसे विचार करते है।

[१] संलाप

सफल सलापकी पहली विशेषता यह होनी चाहिए कि अभिनेता उसे सरलतासे बोल सके। शब्दो और वाक्योका सगठन इस प्रकारका होना

चाहिए कि अभिनेताओंको उनके बोलनेमें किसी प्रकारकी कठिनाईका अनुभव न हो। एक उदाहरणसे बात स्पष्ट हो जायगी। 'अम्बपाली' नाटककी कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'कहाँ अजीब देशमें पहुँच गई हूँ, जहाँ चारों ओर फूल-ही-फूल हैं। जिन्हें हम गूलर-पाकड़-पीपल कहते हैं, उनमें भी फूल लगे हैं—चम्पाके, गुलाबके, पारिजातके। जमीनपर घास-फूसकी जगह फूलोंकी पखड़ियाँ बिछी हैं और धूलकी जगह पीत-पराग बिखरा है।'

इसी उद्धरणका एक परिवर्त्तित रूप देखिए—

'कितना सुंदर देश है यह! फूलोंका देश! राशि-राशिके फूल! चारों ओर फूल-ही-फूल—चम्पाके, गुलाबके, पारिजातके! धरतीपर फूलोंकी पखुड़ियाँ, धूलके बदले पीत पराग!'

दोनों उद्धरणोंको बोलकर पढ़नेसे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाएगा कि किसके पढ़नेमें अधिक सुगमता होती है। प्रथम उद्धरण अपने लिखित रूपमें ठीक है, लेकिन दूसरेमें जो प्रवाह और गति है, वह पहलेमें नहीं है। नाटकोंके संलापोंमें यह विशेषता अनिवार्य है। सफल संलापोंका लिखना बहुत बड़ी कला है, और कुछ अंशोंतक कठिन भी। प्रसिद्ध रेडियो-नाटक-विशेषज्ञ भाल गिलगुडके विचारमें तो सफल संलाप लिखनेकी शक्ति जन्मजात होती है—'Now, in my opinion, for what is worth, the ability to write dialogue is one with which one is born or not It cannot be learned and it cannot be taught' लेकिन बात ऐसी नहीं है। अभ्याससे सब कुछ संभव है। लियोनेल गेमलिनका परामर्श उल्लेखनीय है— 'Constant observation of the way people talk and frequent trial of the dialogue by reading it aloud, will do much to keep the radio writer on the right lines' लोगोंकी बोलचालके ढंगका अध्ययन तथा बोल-

बोलकर सलापोको लिखनेका अभ्यास नाटककारको सलाप-लेखनमे कुशल बना सकता है।

सफल नाटकीय कथनोपकथनकी दूसरी विशेषता यह है कि वह बडी शीघ्रतासे उत्तर-प्रत्युत्तरके रूपमे आगे बढता जाता है। एक अग्रेज लेखकने सफल कथनोपकथनकी उपमा एक ऐसे गेदसे दी है, जो कही ठहरता नही, बल्कि एक हाथसे दूसरे हाथमे होता हुआ सतत गतिशील रहता है। ऐसे कथनोपकथनोसे नाटकमे एकरसता नही आने पाती और घटनाओकी गतिशीलता बनी रहती है। ऐसा तभी सभव है, जब लेखक कम-से-कम किंतु उचित शब्दोके द्वारा सवाद-रचनाका प्रयत्न करे। सक्षिप्ति सफल सलापोकी बहुत बडी विशेषता है। शब्दो एव अलकारोकी छटा दिखलानेका अवकाश रेडियो-नाटकमे नही रहता। इसका मोह त्यागकर ही कोई सक्षिप्त एव प्रभावशाली सलाप लिख सकता है। लबे-लबे सलाप मनको उबानेवाले होते है। उनसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिए। हॉ, आवश्यकता पडनेपर स्थान-स्थानपर बडे सलाप भी लिखे जा सकते है, जैसे कोई व्यक्ति भावावेशमे बोल रहा हो,तो उसके सलापमें बडे-बडे अश दिये जा सकते है।

सफल सलापके लिए यह भी अनिवार्य है कि वह पूर्णत स्वाभाविक हो। यह तभी सभव है, जब वह पात्रोकी चारित्रिक विशेषताओके अनुरूप हो। जैसा पात्र हो, जैसी उसकी शिक्षा-दीक्षा हो, जैसे वातावरणमे वह पला हो, वैसा ही उसका वार्त्तालाप होना चाहिए। इस प्रकारका सफल सलाप पात्रोके चरित्राकनमे भी सहायता पहुँचाता है। स्पष्ट है कि अगर किसी नाटकमे चार पात्र हो, तो चारोकी भाषा अपनी-अपनी होनी चाहिए, उनके बोलनेका ढग भी अलग-अलग होना चाहिए। किसी पात्रके सलापकी ऐसी पक्तियाँ, जिन्हे नाटकका कोई भी पात्र सरलतासे बोल सके, नाटकको असफल बना देगी।

सलापोकी लयपूर्णतापर भी ध्यान देना आवश्यक है। प्रत्येक वाक्यकी अपनी लय होती है। भावात्मक स्थितिके साथ-साथ वाक्योकी लय-

पूर्णता तो बदलती ही है, यह बहुत अशोतक वाक्योंके सगठनपर भी निर्भर है। समान रूपसे सगठित वाक्योमे समान ही लयपूर्णता होती है। इससे रचनामे एकरसता आ जानेकी आशका रहती है। लेखकको सदा इस बातपर ध्यान रखना है कि सलापके वाक्योका सगठन सदा बदलता रहे, जिससे लयपूर्णतामे भी विविधता बनी रहे। उदाहरण आगे 'रेडियो-रूपक' के प्रसगमे देखिए, जिसमे मिथिलाके दार्शनिकोका उल्लेख किया गया है।

सलापकी ये विशेषताएँ रगमच तथा फिल्म-नाटकोके लिए भी सही ह, पर रेडियो-नाटकमे सलापको अन्य कार्य भी करने पडते है। रेडियो-नाटकमे दृश्य-तत्त्वोको प्रस्तुत करनेका बहुत बडा साधन वार्त्तालाप है। घटना-स्थलका वर्णन, वातावरणका निर्माण इसीके द्वारा किया जाता है। एक उदाहरण-द्वारा यह बात स्पष्ट की जाती है—कबीर-जयतीके लिए लिखित एक नाटकमे कबीरकी पत्नी कह रही है—

लोई—आप देखते नही ? यह भयावनी रात ! चारो ओर घोर अधकार ! प्रकृति उत्पात मचा रही है, आँधी चल रही है, तूफान उठ रहा है, प्रलयके बादल उमडे चले आ रहे है, वर्षा हो रही है, घनघोर वर्षा ! सुनिए, ध्यानसे सुनिए, यह आंधी कह रही है, ये मेघ कह रहे ह—'लोई, तू पाप करने जा रही है।' नही सुनते आप ? ये चमकती हुई बिजलिया मुझे मना कर रही है, कह रही है—'मत जाओ लोई, मत जाओ।'

वार्त्तालापके बीचमे आये हुए इस छोटे अशमे प्राकृतिक वातावरण भी उपस्थित हो जाता है, भावाभिव्यक्ति भी हो जाती है, पात्र-परिचय भी मिल जाता है। वार्त्तालापके प्रसगमे पात्र-परिचयपर विशेष ध्यान रखना पडता है, जिससे श्रोता हमेशा यह समझता रहे कि कब कौन पात्र किससे बाते कर रहा है। उदाहरणके लिए ये पक्तियाँ देखिए—

रेखा—रात बीत रही है माधव !

माधव—मेरी आँखोमे नीद नही है।

रेखा—मैं कहती हूँ, अब सो जाओ।

माधव–नही रेखा, अभी मै नही सो सकता।

स्पष्ट है कि रेखा और माधवमे बातें हो रही है। ऐसे अशोसे प्रत्येक रेडियो-नाटक भरा हुआ मिलेगा।

भाव-भगिमा, मुद्रा (रस-सिद्धान्तके अनुभाव) आदिका भी सकेत वार्त्तालापके द्वारा ही किया जाता है। 'विपादकी छाया'की ये पक्तियाँ देखिए—

शकर–क्या देख रहे हो सुरेश ?

सुरेश–मै देख रहा हूँ तुम्हारा मुख, तुम्हारे मुखकी रेखाएँ, तुम्हारी आँखे ! शकर, तुम्हारे मुखपर विपादकी छाया घिरी हुई है, विपादकी गहरी छाया !

पात्रोकी गतिविधि, उनकी उपस्थिति-अनुपस्थिति तथा उनके कार्य-कलापोका भी परिचय सलापोके द्वारा ही देना पडता है।

रेडियो-नाटकमे कथनोपकथनका कितना महत्त्व है, और उनसे कैसे प्रयोजन सिद्ध किये जा सकते है, यह स्पष्ट है। रेडियो-नाटककारमे, जैसा ऊपर कहा गया है, प्रभावशाली एव भावानुरूप सलाप लिखनेकी क्षमता अनिवार्य है। हाँ, सलापकी सूक्ष्मता, विविधता, बलाघात आदिको समझना और उन्हे सजीव एव सप्राण बनाना रेडियो-नाटकके अभिनेताओका काम है।

[२] नैरेशन

'नेरेशन' (Narration) से तात्पर्य नाटकके उस अशसे है, जिसमे कोई पात्र नाटकके क्रिया-कलापोका वातावरण निर्मित करता है, आवश्यक विवरण देता है, घटनाओकी शृखला जोडता है, अथवा घटनाओकी आलोचना करता है। ऐसे पात्रको नैरेटर, सूत्रधार, प्रवक्ता, वाचक, पुरुप-स्वर या स्त्री-स्वर, कथाकार, आलोचक अथवा उद्घोपक

कहा जाता है। ऐसे पात्रोका काम नाटककी उन बातोको कहना होता है, जो कथनोपकथनके अतर्गत नही आ पाती। श्रोता नाटकको भलीभाँति समझ सके, इसके लिए ऐसे पात्रोका नियोजन स्थान-स्थानपर अनिवार्य हो जाता है। नैरेटरके विषयमे सामान्य धारणा है कि नैरेटर केवल रूपकोमे ही होते है, नाटकोमें नहीं। उदाहरणके लिए, प्रसिद्ध नाटककार श्री उदयशकर भट्ट, 'कालिदास'की भूमिकामे लिखते है—'रेडियोमे नाटक और रूपक दो भिन्न वस्तुएँ है, और रूपक तो स्पष्टत. रेडियोकी ही देन है। रूपकमे घटनाओका सकलन एव विकास 'सूत्रधार' या 'नैरेटर'के द्वारा होता है।' पर बात ऐसी नही है। रूपकोमे तो नैरेटर होते ही है, पर आवश्यकता पडनेपर नाटकोमे भी इन्हे रखना पडता है। रूपको और नाटकोमे केवल यही अतर नही है कि रूपकोमे नैरेटर रहते है और नाटकोमे नही रहते। दोनोके वास्तविक अतरका स्पष्टीकरण आगे 'रेडियो-रूपक'अध्यायसे हो जाएगा। हाँ, यह मतभेदका विषय अवश्य है कि नाटकोमे नैरेटरको रखा जाय या नही। कुछ लोग कहते है कि नैरेटर घटनाओकी गति रोक देते है, उनके विकासमे विघ्न उपस्थित करते है। दूसरे लोगोका विचार है कि वातावरणकी सृष्टि करने अथवा घटनाओकी शृखला जोडनेके लिए नैरेटरका रखा जाना उचित है। श्री फेलिक्स फेल्टनके शब्दोमे—'There have been times when narrator's stock has been so low that radio-writers have resorted to contortions of ingenuity to dispense with him At others, they have accorded him the highest seat of honour, and regarded him as the key to radio technique' इस प्रकार नैरेटर कभी सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता है, कभी वह अनावश्यक समझा जाता है। इसका कारण यह है कि पहलेके अन्य नाट्य-स्वरूपोमे इस प्रकारका पात्र नहीं था। रेडियो-नाटकोमे इसका प्रवेश पहली बार हुआ है। इसीलिए इसके औचित्य-अनौचित्यके सबधमे मतभद है। इस विषयपर श्री फेलिक्स फेल्टनका विचार उचित जँचता है। उनके

अनुसार, स्थान-स्थानपर नेरेटर बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करता है। उन्होंने चेस्टरटनकी एक कहानीके रूपातरमे नैरेटरको जान-बूझकर नही आने दिया है, लेकिन वे लिखते हैं कि कुछ पक्तियोंके नैरेशनसे रूपातरमे चेस्टरटनकी अपनी विशेषताएँ झलक जाती। स्वय उनके शब्दोमें—'As an exercise in the use of radio-dialogue, I have, in the above passage, discarded the narrator entirely But it would, in fact be a pity to do so. A few lines of narration are unobjectionable, and perform the valuable service of preserving the essential Chesterton touch' हिंदीमे इस प्रकारके नैरेशनका एक उदाहरण—'कहानियोके रूपातर' शीर्षक अध्यायके अतर्गत 'प्रसाद' जी की कहानी 'इन्द्रजाल'के रूपातरमे देखा जा सकता है। हाँ, यह याद रखनेकी बात अवश्य है कि रेडियो-नाटकके जिस भेदको अगले अध्यायमे 'रेडियो-नाटक' कहा गया है, उसमे भरसक नेरेटर न आये, यही अच्छा है। ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकोमे वह आ भी सकता है, पर सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक नाटकोमे उसका प्रवेश कलात्मक नही समझा जाता।

नैरेटर दो प्रकारके होते हैं (१) वे नेरेटर, जिनके व्यक्तिगत जीवनका नाटककी घटनाओसे कोई सबध नही होता। वे नाटकके क्रिया-कलापोके तटस्थ दर्शक एव प्रवक्ता होते है। (२) वे नेरेटर, जो नाटकके पात्र होते है, और जिनके जीवनकी घटनाएँ नाटकसे प्रत्यक्ष सबध रखती हैं।

पहले प्रकारके नेरेटरकी बातोसे ज्ञात होता है, जैसे वह नाटककी सभी घटनाओसे परिचित हो, जैसे वह सर्वज्ञ हो, सब रहस्योको जानता हो। कभी-कभी वह घटनाओकी गतिमे रुकावट अवश्य डालता है, पर स्थान-स्थानपर आवश्यक प्रयोजन भी सिद्ध करता है। वह सक्षेपमे ऐसा आवश्यक विवरण देता है, जो किसी अन्य प्रकारसे नही दिया जा सकता, किंतु जिसका रहना अनिवार्य होता है, ताकि श्रोता घटनाक्रमको

अच्छी तरह पकड़ सके। इसका एक उदाहरण 'इन्द्रजाल' कहानीके रूपांतरमें देखिए—

बेला (दूरसे)—चकई, रात भई, अब गा तू !

कौन देशमें चकवा प्यारा गाकर उसे बुला तू !

(गीत धीमी आवाजमें पृष्ठभूमिमें चलता रहता है।)

कथाकार— उस निर्जन प्रांतमें जब अंधकार खुले आकाशके नीचे खेल रहा था, तब बेला बैठी गा रही थी। पलासके छोटे-से जंगलमें उसके गीत गूँज रहे थे। जैसे कमलके पास मधुकरको जानेसे कोई रोक नहीं सकता, उसी तरह गोली भी कब माननेवाला था? आज उसके निरीह हृदयमें संघर्षके कारण आत्मविश्वास हो गया था। अपने प्रेमके लिए, अपने वास्तविक अधिकारके लिए उसमें झगड़नेकी शक्ति आ गई थी। उसका छुरा कमरमें था, बाँसुरी हाथमें—

(बाँसुरीकी ध्वनि, बेलाके गीतके साथ। क्रमशः तेज होकर फिर मंद हो जाती है।)

कथाकार—आज प्रेमके आवेशने आवरण हटा दिया था, वे नाचने लगे। आज तारोंकी क्षीण ज्योतिमें हृदयसे हृदय मिले, पूर्ण आवेगमें। आज बेलाके जीवनमें यौवनका और गोलीके हृदयमें पौरुषका प्रथम उन्मेष था।

(सहसा शांति)

गोली—आह ! कौन ?

भूरे—मैं हूँ गोली ! बच गया तू ! मेरा छुरा तुझे न लगा ! मेरी बेलाको गले लगाने चला है !

बेला— तू यहाँ क्या करने आया है ?

भूरे—चुप रह बेला !

गोली—मै कहता हूँ भूरे, तू चला जा यहाँसे, नही तो तेरी जान ले लूँगा !

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि बिना नैरेशनके काम नही चलता । इसी-के द्वारा आगेकी घटनाके लिए पृष्ठभूमि निर्मित कर दी गई है । इस सबधमे यह ध्यान रखना है कि नैरेशन आगे घटनेवाली घटनासे अधिक जोर-दार न हो जाय । उदाहरणके लिए, यदि यह नैरेशन दिया जाय, 'पलकोमे मनहर सपने लिये हुए शकुन्तला महाराज दुष्यतके सम्मुख गई, किंतु दुष्यत-ने उसे न पहचाना' और इसके बाद दुखिता शकुन्तलाको दिखलाया जाय, तो कहा जाएगा कि यहाँ नैरेशन कमजोर है । यहाँ राजसभामे राजाके मुखसे प्रत्याख्यानकी बात ही मार्मिक और महत्त्वपूर्ण है । उसे नैरेशनमें न कहकर प्रत्यक्ष रूपमे चित्रित करना ही उचित होगा ।

नैरेशनके सबधमे यह भी ध्यान रखनेकी बात है कि उसमे आगे या पीछे की घटनाओकी आवृत्ति न हो जाय । इससे नैरेशनकी निरर्थकता सिद्ध होगी । एक उदाहरण देखिए—

कथाकार—सत्यप्रकाश अब युवक था । जबतक पाँव न थे, तबतक अवहेलना, निरादर, भर्त्सना, सबकुछ सहकर घरमे रहता रहा । अब हाथ-पाँव हो गये, तो बधनमे क्यो रहता ? एक दिन वह आत्माभिमानसे प्रेरित हो चल पडा ।

ज्ञानप्रकाश (शिशु)—कहा जाते हो भैया ?

सत्यप्रकाश (युवक) जाता हूँ, कही नोकरी करूँगा ।

ज्ञानप्रकाश—मै जाकर अम्मासे कहे देता हूँ ।

सत्यप्रकाश—तो फिर मै तुमसे छिपाकर चला जाऊगा ।

ज्ञानप्रकाश—क्यो चले जाओगे ? तुम्हे मेरी जरा भी मुहब्बत नही है ?

सत्यप्रकाश—तुम्हे छोडकर जानेको जी नही चाहता ज्ञानू, लेकिन जिस घरमे कोई पूछनेवाला नही, उसमे अब नही रह सकूँगा । जबतक हाथ-पैर न थे, तबतक लाचारी थी ।

यहाँ ज्ञानप्रकाश और सत्यप्रकाशकी बातोसे यह ज्ञात हो जाता है कि सत्यप्रकाशका घरमे कोई सम्मान नही था, जबतक वह शिशु था, तबतक विवश होकर घरमे रहा, पर बडा होनेपर घरकी अवहेलना उसके लिए असह्य हो उठी। 'इस प्रकार सलापमे नैरेशनकी कोई बात छूटने नही पाती, फलत वह निरर्थक हो जाता है।

वह नैरेशन उचित समझा जाएगा, जो साधारण एव गौण घटनाओका उल्लेख कर नाटककी गतिशीलतामे सहायक होता है। श्री प्रेमचदकी कहानी 'लैला'के रूपातरमे एक स्थानपर नेरेटर कहता है—'तेहरानमे घर-घर आनदोत्सव हो रहा था। शाहजादा नादिर लैलाको व्याहकर घर लाया था। अपने प्यारे शाहजादेकी शादीमे धन और समयका मुँह देखना किसीको गवारा न था। रईसोने महफिले सजाई, चिराग जलाये, बाजे बजवाये, गरीबोने अपनी डफलियाँ सँभाली और सडकोपर खुशीसे उछलते फिरे। उसी दिन सध्या-समय'—यहाँ नेरेशनमे आनदोत्सवका उल्लेख कर दिया गया है, और आगेकी इससे अधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओके लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी गई है।

नैरेशन स्थान-स्थानपर आवश्यक है, लेकिन यह उचित नही है कि उसका बार-बार प्रयोग कर घटनाओकी गतिमे बाधाएँ उपस्थित की जायँ। सबसे अच्छा तो यही होता है कि नैरेशन किसी घटनाके पूव ही दिया जाय। उसके-द्वारा, घटना-क्रममे किसी प्रकार विघ्न न डाला जाय।

किसी-किसी नाटकमे दो नेरेटरोसे काम लिया जाता है। इसमे उचित यह होता है कि दोनो नेरेटर दो विभिन्न विचारो एव भावनाओका प्रतिनिधित्व करते हो अथवा दो दलोके हो, और वे अपने-अपने पक्ष एव दलसे सबधित घटनाओका ही नेरेशन दे। उदाहरणके लिए, यदि कौरव-पाडव-युद्धका विवरण देना है, तो एक नैरेटर कौरव-दलकी घटनाओको बतलाये और दूसरा पाडव-दलकी। लेखक चाहे तो दो नैरेटरोको इस प्रकार रख सकता है कि श्रोताओको पता न चले कि दो नैरेटर बोल रहे है। इसके

लिए उपाय है कि दोनो नैरेटर उपर्युक्त दो श्रेणियोके हो। पहला नैरेटर घटनाओका तटस्थ दर्शक हो, और दूसरा नाटकका एक पात्र।

पद्य-नाटकोमे नैरेटरका उपयोग एक चारणके रूपमे किया जा सकता है। प्राचीनकालमे जिस प्रकार चारण युद्ध-वर्णन करते थे, उसी प्रकार नैरेटर विभिन्न घटनाओका विवरण दे सकते है तथा वास्तविक घटनाओके लिए उचित वातावरण निर्मित कर सकते है।

ये तो हुई पहली श्रेणीके नैरेटरकी बाते, अब हम दूसरी श्रेणीके नैरेटरके सबधमे विचार करे। यह द्वितीय श्रेणीका नैरेटर नाटकका एक पात्र होता है। इसीलिए कभी-कभी उसे पहचानना कठिन होता है कि वह एक नैरेटर है। ऐसे नैरेटरको हम सुविधाके लिए पात्र-नैरेटर कह सकते हैं। जीवन-चरित्तपर आधारित नाटकोमे ये महत्त्वपूर्ण कार्य करते है। एक उदाहरण प्रसिद्ध कलाकार माईकेल एजिलोके जीवनपर आधारित नाटक 'रग और रूप' से देखिए। नाटक माईकेल एजिलोके अतिम क्षणसे प्रारभ होता है। एजिलो मर रहा है, और अपनी परिचारिकासे बाते कर रहा है। इन्ही बातोके प्रसगमे वह अपनी जीवन-गाथा कह जाता है—वही का एक छोटा-सा अश इस प्रकार है—

एजिलो (वृद्ध)—हा, आज म बहुत बेचैन हूँ। आज मेरी आँखोके सामने मेरी समूची जिन्दगी नाच रही है। वे आदमी, जिनसे मेरी भेट हुई थी, वे स्थान, जिन्हे मैने देखे थे, ये मूर्तियाँ और चित्र, जिन्हे मैने बनाये थे, आज सब-के-सब मेरी आखोके सामने तस्वीरोकी तरह चमक रहे है। लगता है, जैसे इस मरनेकी घडीमे मै अपनी बीती हुई जिन्दगी एक बार फिर जी रहा हू।

स्त्री—डाक्टरने मना किया है माईकेल, आप इतना न बोले, शात रहे।

एजिलो (वृद्ध)—(हल्की हसी) मै शात रहूँ।—मुझे छोडकर सब

चले गये । मेरे गुरु, मेरे शिक्षक लारेंजो, लारेंजो महान् ! तुमने देखा था उन्हे कभी ?

स्त्री—नही, मैने तो कभी नही देखा था ।

एंजिलो (वृद्ध)—नही देखा था !—कितने अच्छे थे वे ! कितने प्रेमसे उन्होने मुझे चित्र और मूर्त्तिकलाकी शिक्षा दी थी ! उस समय मै सोलह वर्ष का था !

(छेनी-हथौडीकी आवाज)

लारेंजो—क्यो माईकेल, मूर्त्ति बन गई ?

एंजिलो (किशोर)—जी हाँ, यह देखिए !

लारेंजो—(हल्की हँसी) अरे, तुमने तो इसके दांत तोड दिये !

एंजिलो (किशोर)—आपहीने तो कहा था ?

लारेंजो—कितने भोले हो तुम ?—खैर, इससे क्या हुआ, यह टूटा हुआ दाँत भी अच्छा ही लगता है ! सचमुच तुम बडे प्रतिभा-वाले हो, बहुत बडे कलाकार होगे ! मै तुम्हारे पिता लुडो-विकोसे कहूँगा कि वह तुम्हे मेरे साथ मेरे घरपर रहने दे ! मै तुम्हे कलाओके बारेमे बहुत-सी बाते बतलाऊगा । रहोगे मेरे यहाँ ?

एंजिलो (किशोर)—जी हाँ !

लारेंजो—तो, मै आज ही तुम्हारे पितासे बात करूँगा !

(संक्षिप्त सगीत)

(छेनी-हथौडीकी आवाज)

लारेंजो—क्या कर रहे हो माईकेल ?

एंजिलो (किशोर)—यह, एक नई मूर्त्ति गढ रहा हूँ ।

लारेंजो—तुम्हे हमेशा किसी-न-किसी मूर्त्तिमे लगा देखता हूँ ।

एंजिलो (किशोर)—मुझे बहुत आनद मिलता है इसमे ! और, जबसे आपके यहाँ आया हूँ, तबसे यही इच्छा होती है, कि कैसे

एक ही बारमे सब कुछ सीख लूँ। इतनी सुदर मूर्त्तियाँ आपके बगीचेमें है कि मैं उन्हे देखता ही रह जाता हूँ।

लारेंजो—इसीलिए तो तुम्हे अपने यहाँ ले आया हूँ।

एंजिलो (किशोर)—कितना खुश हूँ मैं यहाँ आकर ! ऐसी सुदर कला-कृतियाँ तो मुझे कही भी देखनेको नही मिलती।

लारेंजो—अभी तुमने सब कुछ नही देखा है माईकेल ! मेरे कमरोमे बहुत-से ऐसे चित्र है, जो ससारमे और कही देखनेको नही मिलेंगे।

एजिलो (किशोर)—मैं उन्हे देखूँगा कैसे ?

लारेंजो—तुम्हारे-जसे शिष्यको मैं सब कुछ दिखला दूँगा। ये लो कुजियाँ, मेरे सभी कमरोकी कुजियाँ है, उन्हे खोलकर जो कुछ देखना चाहो, देखना, और उनकी कलाको ध्यानसे समझने की कोशिश करना !

एंजिलो (किशोर)—कितने अच्छे है आप !

(पृष्ठभूमिमें शोक सगीत)

लारेंजो—(रुँधा स्वर) मैं जा रहा हूं माईकेल !

एजिलो (किशोर)—नही गुरुदेव, अभी आपसे मुझे बहुत कुछ सीखना है।

लारेंजो—तुम खुद सब कुछ सीख लोगे माईकेल ! मुझे तुम्हारी प्रतिभा पर विश्वास है।

एजिलो (किशोर)—अब मुझे इतने प्रेमसे कौन सिखलाएगा !

लारेंजो—अधीर न हो माईकेल ! मेरी आखिरी घडी इतनी जल्दी आ पहुँची ! मुझे दुख है कि तुम यहाँ दो-तीन ही साल रह सके !

एजिलो (किशोर)—लेकिन मैं अब क्या करूँगा !

लारेंजो—जो काम तुम कर रहे हो, करते जाना। मुझे विश्वास है कि तुम इसमे सफल होगे, तुम संसारके सबसे बड़े कलाकार होगे! अच्छा, एंजिलो! मै चला! आह!

(शोक-संगीत तेज होकर फिर मंद हो जाता है।)

एंजिलो (वृद्ध)—(हल्की हँसी)

स्त्री—क्या है माईकेल एंजिलो? आप इस तरह क्यो हँस रहे है?

एंजिलो (वृद्ध)—अपनी बीती हुई जिन्दगीको एक बार फिर देख रहा हू। कैसे सबलोग मुझे छोड़ छोड़कर चले गये! मेरे शिक्षक लारेंजो महान् मुझे अकेला छोड़कर चले गये, और मुझे फिर अपने पिताके घर लौट जाना पड़ा!

(और इसी तरह एंजिलो अपनी आत्म-कथा कहता जाता है।)

आपने देखा कि यहाँ नैरेटर स्वयं वृद्ध एंजिलो है, वही अपने जीवनकी घटनाओंका उल्लेख करता है, और विभिन्न दृश्य उसकी आखोंके सामने आते जाते है। नैरेटरके इस छद्म रूपको पहचान लेना श्रोताके लिए कठिन है। ऐसे पात्र-नैरेटरोकी सृष्टिमे यही लाभ है। अगर कोई नाटक किसीकी आत्म-कथाके आधारपर लिखना हो, तो उसमे उस व्यक्ति-विशेषकी शब्दावलियोका भी उपयोग किया जा सकता है। ऊपरके उद्धरणमे यह भी ध्यान देनेकी बात है कि छोटे छोटे तीन विभिन्न दृश्योके बीच-बीचमे नैरेशन नही दिया गया। इस प्रकार नैरेशनका कम-से-कम व्यवहार हुआ है—वह भी दृश्योके प्रारंभ या अतमे।

पात्र-नैरेटरोकी उपयोगिता स्पष्ट है, लेकिन सब जगह इनका नियोजन करना कठिन ही नही, असभव है। हाँ, किसी दृश्यको हम पात्रविशेषकी आखोमे देख सकते है, अथवा सोच सकते है कि वह अपेक्षित प्रसगके बारेमे पूरी जानकारी रखता है। विशेषता उसको नाटकमे इस प्रकार रखनेमे है कि वह तटस्थ दर्शक ही नही, घटनाओमे भाग लेनेवाला भी हो। 'अहिसाकी मूर्त्ति'से एक छोटा उदाहरण दिया जा रहा है। इसमे कल्पना की

गई है कि स्वर्ग-लोकमे महात्मा गाँधीकी दूसरी वर्ष-गाँठ मनाई जा रही है। स्वर्ग-लोकके नर-नारी उत्सवके आयोजनमे सलग्न है। उसी समय चद्रलोकका एक मनुष्य वहाँ आ पहुँचता है। उसकी भेट स्वर्ग-लोककी एक नारी लेखासे हो जाती है। वहाँका सलाप इस प्रकार है—

लेखा—(वीणा-वादन)

पुरुष—(कुछ दूरसे) देवि! देवि!

लेखा—कौन?—आपने मुझे पुकारा?

पुरुष—हाँ देवि, मै इस लोकके लिए अपरिचित हूँ। क्या आप एक बात बतलाएँगी?

लेखा—स्वर्ग-लोकमे किसीसे कुछ पूछनेमे आपको सकोच न होना चाहिए। कहिए, आप क्या जानना चाहते है?

पुरुष—मै देख रहा हूँ, इस लोकके प्राणी आज स्थान-स्थानपर उत्सव का आयोजन कर रहे है, पत्र-पुष्पोसे घर-द्वार सजा रहे है! आज कोई त्योहार है क्या?

लेखा—नही-नही, त्योहार तो कल है। कल सध्या समय महात्मा गाँधीजीकी दूसरी वर्ष-गाँठ मनाई जाएगी। वे कलके ही दिन हमारे लोकमे आये थे।

पुरुष—और आज?

लेखा—उसी उत्सवकी तैयारी हो रही है।

पुरुष—लेकिन ये महात्मा गाँधी है कौन?

लेखा—(आश्चर्यसे) आप महात्मा गाँधीको नही जानते?

पुरुष—जी नही, मै आज ही चद्रलोकसे आ रहा हूँ।

लेखा—इसीलिए आप नही जानते। पृथ्वीपर तो कोई ऐसा प्राणी नही, जो महात्मा गाधीको न जानता हो।

पुरुष—क्या आप मुझे उनका परिचय देगी?

लेखा—अवश्य! इतनी महान् आत्मा स्वर्ग-लोकमे कभी-कभी ही आती है। महात्मा गाँधी सत्यके साक्षात् अवतार है, त्याग

ओर तपस्याके दूत ह, प्रेम ओर करुणाके प्रचारक है, अहिंसाकी मूर्ति है।

ओर, इस प्रकार लेखा महात्मा गाँधीका जीवन-परिचय देना शुरू करती है। वह भी एक प्रकारसे पात्र-नैरेटर ही है। चूँकि यह नाटक बच्चोंके कार्यक्रमके लिए लिखा गया था, नाटकमे बच्चोकी अभिज्ञताका प्रतिनिधित्व करनेवाला कोई पात्र होना चाहिए था। इसीलिए पुरुषको महात्मा गाँधीके जीवनसे पूर्णत अभिज्ञ रखा गया है।

इसी प्रकारसे नैरेटर विभिन्न नाटकोमे विभिन्न रूप धारण करके आता है। छद्म-वेषमें रहनेपर वह कुछ नवीन-जैसा लगता है। 'उत्तरा और द्रौपदी' नाटकमे मैने इतिहासको नैरेटर बनाया था। प्रारभकी कुछ पक्तियाँ इस तरह है—

(पुस्तकके पन्ने उलटनेकी आवाज)

नारी—इतिहास! —इतिहास!

इतिहास—कौन हो तुम ?

नारी—मै हूँ नारी।

इतिहास—क्या चाहिए तुम्हे ?

नारी—मै तुमसे कुछ सुनने आयी हूँ इतिहास! तुम अनत कालसे ससारकी गाथा लिखते आ रहे हो। तुमने जीवनके अनेक उत्थान-पतन देखे है, ध्वस और निर्माण देखे है। क्या तुम मेरी गौरव-गाथा सुनाओगे ?

इतिहास—गौरव-गाथा सुनोगी ?

नारी—हाँ इतिहास, मै अपने अतीतके गौरवपूर्ण जीवनसे प्रेरणा ग्रहण करना चाहती हूँ, जिससे भविष्यका सुदर निर्माण कर सकूँ।

इसके बाद इतिहास नारीकी गौरव-गाथा सुनाता है। वह स्पष्ट ही एक नैरेटर है, पर उसका नाम बदला हुआ है। ऐसे नैरेटरोमे सामान्य नैरेटरो (स्त्री-स्वर, पुरुष-स्वर, वाचक, वाचिका आदि) की अपेक्षा अधिक मनोरजकता होती है।

अब हम नरेशनकी भाषा-शैलीके बारेमे विचार करे। नरेशनकी समची शक्ति उसकी भाषा-शैलीपर ही निर्भर है। इसके लिए सबसे पहले तो हमे यह याद रखना चाहिए कि रेडियोके नैरेशन और कहानी-उपन्यासोके नरेशन (कथा-लेखक जो कुछ अपनी ओरसे कहता है, वह नैरेशन ही तो है) मे काफी अतर है। कहानी-उपन्यास पढनेके लिए लिखे जाते है, रेडियो-नरेशन सुननेके लिए। और, जैसा कि हम देख चुके है, पढने और सुननेकी चीजोमे बहुत अतर है। मन-ही-मन किसी उद्धरणको हम सरलता-से पढ सकते है, पर उसे बोलकर सुनानेमे कठिनाई हो सकती है। इसलिए शब्दोका सयोजन इस प्रकार होना चाहिए कि अभिनेताओको उन्हे बोलनेमे कठिनाईका अनुभव न हो। उदाहरणके लिए यदि किसीको कहना पडे—'यह बात तो पहलेसे कही ही हुई है', तो वह अतिम चार शब्दोको सरलता-से नही कह सकेगा। यद्यपि यहाँ कोई कठिन शब्द नही है, पर शब्दोका सयो-जन ठीक ढगसे नही हुआ है।

अभिनेता किसी नरेशनको सरलतासे पढ सके, इसके लिए यह भी आव-श्यक है कि विराम आदि चिह्नोपर पूरा ध्यान रखा जाय, वाक्य सरल हो और उनमें ऐसे स्थल हो, जहाँ अभिनेता तनिक रुककर सास ले सके।

इसी प्रकार वाक्योके सयोजनपर भी ध्यान देना चाहिए। वाक्योका सगठन इस प्रकारका होना चाहिए कि उनका अर्थ एक बार सुननेपर समझमे आ जाय। चूँकि श्रोता पाठककी तरह किसी पुस्तकके पिछले पृष्ठोको फिरसे नही देख सकता, किसी बातको दुहराकर नही सुन सकता, यह जरूरी है कि रेडियो-लेखक वाक्योके सगठनपर ध्यान दे। इस दृष्टिसे सरल वाक्यो का बडा महत्त्व है। श्रोताओकी सुविधाकी दृष्टिसे अनेकार्थ शब्दोसे भी बचना जरूरी है। अनेकार्थ शब्दोके प्रयोगसे अर्थ समझनेमे कुछ कठिनाई हो सकती है। उद्धरण-चिह्नोका प्रयोग भी अर्थ समझनेमे बाधक होता है।

एक प्रश्न अवश्य है कि नैरेशनके वाक्य कितने बडे-बडे हो ? यह वातावरणपर निर्भर है। भावोके अनुरूप वाक्य बडे और छोटे सब

प्रकारके हो सकते है। जैसे, कही करुणाका वातावरण है, तो वहा वाक्य मद गतिसे चलनेवाले कुछ लबे-लबे हो सकते है, पर जहा युद्ध, शक्ति और प्रगतिकी व्यजना करनी है, वहा नेरेशन बहुत छोटे-छोटे होगे, वाक्य भी छोटे और तेज गतिसे चलनेवाले होगे। उदाहरण 'रेडियो-रूपक' अध्यायमे दी गई 'अहिंसाकी मूर्त्ति' से उद्धृत अशमे देखा जा सकता है। वहा घटनाओमे गति है, इसलिए वहांके नेरेशन और वाक्य बहुत छोटे-छोटे है।

वाक्य छोटे-छोटे ही हो, यह कोई आवश्यक नही, लेकिन इस बातपर ध्यान देना आवश्यक है कि नेरेशनमे भाषाकी सजावटके लिए स्थान नही है। हमे कम-से-कम शब्दोमे अपनी बाते कहनी है। यदि हम अलकृत भाषा लिखकर श्रोताओके मनको मुग्ध करना चाहते है, तो यह हमारी भूल है। ऐसा करके हम आगे और पीछेकी घटनाओकी गतिमे बाधा उपस्थित करते है। एक उदाहरण द्वारा बात आसानीसे समझी जा सकेगी —

(पृष्ठभूमिमें शोक-सगीत)

आदित्य—(**रुक-रुककर, धीरे-धीरे**) अब मुझे सन्तोष हो गया करुणा! इस बच्चेकी ओरसे अब मुझे कोई शका नही है। मैं इसे कुशल हाथोमे छोड रहा हूँ (**खाँसी**) अब मैं सुखसे मर सकता हूँ! आह! (**खाँसी**) आह!

करुणा—नाथ!

आदित्य—क-रु-णा (**खाँसी समाप्त**)

(शोक-सगीत तेज होकर समाप्त हो जाता है)

नैरेटर—सात वर्ष बीत गये।

स्त्री—बहनजी, कुछ दूध मुझे दीजिएगा?

करुणा—तुम्हारी ही चीज तो है, खुशीसे ले जाना।

यहां नरेशन केवल एक पक्तिका है। इसी नाटकमे यह नैरेटर अगली बार कहता है—'कुछ वर्ष और बीत गये। प्रकाश कालेजमे पहुँच गया।' इन स्थलोपर भाषा-सौदर्य दिखलानेके लिए अवकाश नही है। मात्र

लीजिए, कोई कहे—'समय रुकता नही, बढता जाता है। प्रहर दिन और रातमे बदल जाते है, दिन और रात महीने बन जाते है, और महीने "वर्ष" की छोटी सज्ञामे सिमट जाते है। इसी तरह सात वर्ष बीत गये।' इसके साथ ही नैरेशनमे यह भी कहा जा सकता था कि समय किस प्रकार दु ख को भूल जानेमे सहायक होता है, किस प्रकार समयके साथ मनुष्यकी मनोवृत्तिया बदल जाती है, और किस प्रकार ये बाते करुणाके जीवनके लिए भी सत्य सिद्ध हुई। लेकिन इन बडे नैरेशनोका कोई उपयोग नही। ये केवल घटनाओकी गतिमे विघ्न ही उत्पन्न करते है। जहा एक पक्ति ही लिखनेसे काम हो जाय, वहाँ अनेक पक्तियाँ लिखना शब्दोका अपव्यय करना होगा। लियोनेल गैमलिन के शब्दोमे—'The art of writing a good radio script, indeed, often lies in knowing what *not* to say There is no room for any phrase, even in the lightest conversational passage, which does not play an active part in the forward march of the programme Words in the radio have to work their passage, and one has ofter got to do the office of three or four There is certainly no room for the merely decorative' ये बाते केवल नैरेशनके लिए ही नही, बल्कि सलापोके लिए भी सही है।

ध्वनि-प्रभाव

ध्वनि-प्रभावका तात्पर्य हास्य, रुदन, वर्षा, बादल, [illegible], टेलीफोन, रेलगाडी, मोटर, बदूक, मशीनगन आदिकी ध्वनियोसे है, जिनका व्यवहार रेडियो-नाटक प्रसारित करते समय किया जाता है। प्रत्येक रेडियो-स्टेशनमे ऐसे ध्वनि-प्रभावोके रिकार्ड रखे जाते है। कुछ ध्वनि-प्रभाव प्रसरणके समय स्टूडियोमे ही उत्पन्न किये जाते है। नाटक-लेखकका इन बातोसे कोई विशेष सबध नही। उसे केवल उचित स्थलपर उचित ध्वनि-

प्रभावका निर्देश कर देना पडता है। हॉ, उसे इस बातपर अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि असभव ध्वनि-प्रभावोका प्रयोग न हो जाय।

परिपार्श्व-निर्माणमे ध्वनि-प्रभावोसे बहुत सहायता मिलती है। रग-मच-नाटकोमे यवनिकाँपर अकित दृश्यादि परिपार्श्वका काम करते है, पर रेडियो-नाटकमे वैसा कोई परिपार्श्व नही होता। रेडियो-नाटकमे ध्वनि-प्रभाव ही यह काम करते हैं। उनसे दृश्योमे एक प्रकारकी घनता आती है, जिससे ज्ञात होता है कि पात्रोका अभिनय शून्यमे न होकर एक ठोस पृष्ठभूमिपर हो रहा है।

वातावरण-निर्माणके लिए ध्वनि-प्रभावोका बडा महत्त्व है। रेडियो-नाटकमे ऑखोके सामने कोई प्रत्यक्ष चित्र नही आता, केवल ध्वनियो और शब्दोके द्वारा मानस-चित्र बनते है। इस चित्र-निर्माणमे नाटककारकी चित्र-प्रधान शब्द एव ध्वनि-योजना तो काम करती ही है, श्रोताकी कल्पना-शक्तिको भी श्रम करना पडता है। रगमच तथा फिल्म-नाटक वातावरण एव परिस्थितिका पूर्ण चित्र स्वत खीच देते है, दर्शककी कल्पना-शक्तिको स्वय कोई चित्र-निर्माण नही करना पडता। लेकिन रेडियो-नाटक श्रोताकी भावना एव कल्पना-शक्तिको उत्तेजित करता है। यहाँ केवल टेलीफोनकी घटी बजती है, कागजकी खडखडाहट होती है, और आफिसका एक चित्र श्रोताके मानस-पटपर खिच जाता है। इसीलिए रेडियो-नाटककी कलाको सकेतकी कला कहा जाता है। किसी ध्वनि-प्रभावके सकेत मात्रसे उचित वातावरणका निर्माण हो जाता है। विभिन्न अध्यायोमे दिये गये उद्धरणोसे यह बात स्पष्ट हो जाएगी। ध्वनियोके प्रयोगसे घटनाओकी गतिशीलता किस प्रकार व्यक्त की जा सकती है, इसका उदाहरण 'रेडियो-रूपक'के प्रसगमे 'अहिंसाकी मूर्त्ति' नाटकसे दिया गया है।

अनेक स्थलोपर ध्वनि-प्रभाव अपनेमे पूर्ण एव स्पष्ट नही होते। जैसे, गिलासमे पानी डालनेकी आवाज सुनाई देनेपर भी यह नही मालूम होता कि यह पानी है, शराब है अथवा दवा है। इसी प्रकार ध्वनिसे दिशा

भी नही सूचित होती । किसी मोटरकी आवाज सुनाई पडनेपर भी यह ज्ञात नही होता कि वह किस दिशासे आ रही है । आवश्यक होनेपर सलापमे उसका निर्देश करना पडता है ।

ध्वनि-प्रभावोके सबधमे सबसे पहली बात यह है कि उनका व्यवहार कम-से-कम किया जाय । जैसा ऊपर कहा गया, रेडियो-नाटककी कला सकेतकी कला है । इसलिए उसमे केवल सकेत ही देना चाहिए, पूर्ण विवरण देनेका प्रयत्न करना उचित नही । नाटककारकी कुशलता कम-से-कम, किन्तु प्रभावशाली ध्वनि-प्रभावके चुनावमें है । किसी आफिसके वातावरण-निर्माणके सबधमे ऊपर एक निर्देश हुआ है ।

एक ही ध्वनि-प्रभावका बार-बार व्यवहार करना श्रोताओके लिए बहुत अरुचिकर होगा । जितनी बार कोई पात्र घटनास्थलपर जाए और वहासे लौटे, उतनी बार उसके पैरोकी आवाज और दरवाजोको खोलने-बद करनेकी ध्वनि अच्छी नही लगेगी । ऐसे ध्वनि-प्रभाव प्रभावशाली नही हो सकेगे । इसीलिए कहा जाता है कि ध्वनि-प्रभावोका व्यवहार कम-से-कम किया जाय । फेलिक्स फेल्टनका कहना उचित ही है कि ध्वनि-प्रभाव जितने कम रहेंगे, उतने ही अधिक प्रभावोत्पादक होगे । स्वय उसके शब्दोमे, 'Effects should be effective, and the less they are used, the more effective they are'

यदि किसी स्थलपर अनेक ध्वनि-प्रभावोको काममे लाना अनिवार्य हो, तो एक-एक ध्वनि-प्रभावका बारी-बारीसे व्यवहार करना चाहिए । एक ही बार कई ध्वनि-प्रभावोको काममे लानेसे कोलाहल मच जाएगा और उससे कोई निश्चित प्रभाव उत्पन्न नही हो सकेगा ।

कुछ लोग समझते है कि चूकि ध्वनि-प्रभाव केवल रेडियो-नाटकोमे ही होते है, वे रेडियो-नाटककी अपनी चीज है और उनका अधिक-से-अधिक उपयोग किया जाना चाहिए । फल यह होता है कि कुछ नाटक केवल ध्वनि-प्रभावोके लिए ही लिखे जाते है । यह उचित नही है । ध्वनि-प्रभाव तो

केवल साधन है, साध्य है नाटक-द्वारा श्रोताओंको प्रभावित करना। इसीलिए ध्वनि-प्रभावोंका व्यवहार वहीं तक होना चाहिए, जहाँ तक वे रेडियो-नाटकके प्रभावमें सहायक हो सकें।

कुछ रेडियो-स्टेशनोंमें किसी एक नाटकके लिए जो ध्वनि-प्रभाव बन गये, दूसरे नाटकोंमें उन्हींका बार-बार उपयोग किया जाता है। श्रोताओंके लिए वैसे ध्वनि-प्रभाव नवीन एव प्रभावोत्पादक नहीं रह जाते। होना यह चाहिए कि विशेष नाटकोंके लिए विशेष ध्वनि-प्रभावोंका ही उपयोग हो।

लुई मेकनीसके अनुसार, ध्वनि-प्रभावोंके सबधमें, अतमें, यही कहा जा सकता है कि इनका व्यवहार तभी करना चाहिए, जब ये नाटकको प्रभावोत्पादक बना सकें और व्यावहारिक हों—'In general, a radio writer should only ask for effects when they are (a) practicable, (b) an asset to his story They must not be overused or indulged in for their own sake'

संगीत

सगीतसे तात्पर्य वाद्य-सगीतसे है। यह प्राचीन कालसे ही नाट्य-कला का एक आवश्यक अग रहा है। सगीत स्वय एक ललित कला है, और इसके प्रभावकी तीव्रता सभी कलाओंसे अधिक है, इसे कोई अस्वीकार नहीं करता। रेडियो-नाटकका तो यह एक प्रमुख अग है।

रेडियो-नाटकमें सगीतका व्यवहार दो प्रकारसे किया जाता है—(१) स्वतन्त्र रूपसे और (२) सलापकी पृष्ठभूमिके रूपमें।

सगीतका स्वतन्त्र रूपसे व्यवहार नाटकके प्रारभ और अतमें होता है। नाटकके प्रारभमें आनेवाला सगीत नाटककी भावात्मक विषय-वस्तु (theme) का प्रतीक होता है, और वह आगेकी घटनाओंके लिए वातावरण निर्मित करता है। प्रारभका आकर्षक सगीत नाटकके प्रति श्रोताओं-

की उत्सुकता जगा सकता है। अतका सगीत नाटककी समाप्तिकी सूचना देता है। उससे नाटककी पूर्णताका बोध होता है। सगीतके द्वारा दृश्य-परिवर्त्तन किया जा सकता है। रगमचपर दृश्य-परिवर्त्तनके लिए पर्दे होते है, पर रेडियो-नाटकमे दृश्यके अतमे सगीत दे दिया जाता है, और दृश्य परिवर्त्तित हो जाता है। फिर कथनोपकथन तथा ध्वनि-प्रभावके द्वारा नया दृश्य उपस्थित किया जाता है। दृश्य-परिवर्त्तनके लिए रेडियो-नाटकमे एक और उपकरण है—शाति। दो दृश्योके बीचमे कुछ सेकेडोके लिए शाति रहने दी जाती है, जिससे दृश्य परिवर्तित समझा जाता है।

एक दूसरे प्रयोजनके लिए भी सगीतका स्वतत्र रूपसे व्यवहार किया जाता है। वह है घटनाओकी श्रृखलाएँ जोडना ओर गति सूचित करना। अगर दृश्य कही बडी शीघ्रतासे बदलते हो, तो वाद्य-सगीत-द्वारा इसकी व्यजना की जा सकती है। 'कहानियोके रेडियो-रूपातर'के प्रसगमे इस तरह का एक उदाहरण 'गोटेकी टोपी'के रूपातरसे उद्धृत अशमे आया है। सगीत-द्वारा गति किस प्रकार सूचित की जाती है, इसका उदाहरण 'वे अभी भी क्वाँरी है'के प्रारभिक अशमे देखिए।

दृश्य-परिवर्त्तनका सगीत बहुत सक्षिप्त होना चाहिए, जिससे नाटककी गतिमें किसी प्रकारकी बाधा न उपस्थित हो। साथ ही नाटक तथा उसके दृश्योमे अभिव्यक्त भावनाओके साथ उसका पूर्ण सामजस्य होना चाहिए।

स्थान-स्थानपर प्रतीकात्मक सगीतका भी उपयोग किया जा सकता है। प्रतीकात्मक सगीतसे तात्पर्य है उस सगीतसे, जो किसी विशेष भावना, विशेष व्यक्ति अथवा विशेष स्थानको सूचित कर सके। 'नोआखाली-यात्रा' काव्य-रूपकमे 'रघुपति राघव राजा राम'की धुन द्वारा विभिन्न स्थानोपर महात्मा गाँधीकी उपस्थिति सूचित की गई थी।

पृष्ठभूमि सगीतसे अनेक प्रयोजन सिद्ध किये जाते है। सगीतमें भावोद्दीपनकी अद्भुत शक्ति है। सलापके पीछे भावानुरूप सगीतकी योजना करके सलापके प्रभावको तीव्र बनाया जा सकता है। पर उचित स्थल-

पर उचित सगीतके व्यवहार-द्वारा ही यह कार्य सभव है। करुण-स्थलपर करुणा-व्यजक सगीत ही प्रभावोत्पादक होगा। भावोद्दीपनके साथ-साथ भाव-परिवर्त्तनका काम भी सगीतके-द्वारा किया जाता है। अगर पात्रके हृदयमे एक भावके बाद दूसरे प्रकारका भाव आ रहा हो, तो सगीतके प्रकार-मे परिवर्त्तन करके इसे व्यजित किया जा सकता है। यदि किसी पात्रके मनमे दो भावनाओका सघर्ष चल रहा हो, तो सगीत-द्वारा इसे सूचित किया जा सकता है।

ध्वनि-प्रभावकी भाँति वातावरण-निर्माणके लिए भी सगीतका उपयोग होता है। यदि कोई आनदपूर्ण प्रसग चल रहा हो, प्राकृतिक सौंदर्यका दृश्य उपस्थित किया जा रहा हो, तो पृष्ठभूमि-सगीत उचित वातावरण का निर्माणकर उन प्रसगोको सजीव बना देता है।

पृष्ठभूमि-सगीत-द्वारा वातावरणका निर्माण तो होता ही है, नीरस प्रसगोको सरस बनाया जा सकता है। इसका एक उदाहरण 'मिथिला' रूपकसे देखिए—

(पृष्ठभूमिमें शास्त्रीय वाद्य-सगीत)

पुरुष—मिथिला गीतोका देश है।

स्त्री—लोग कहते भी है—'तिरहुति गीत बडए अनुराग।'

पुरुष—सगीतकी साधनामे मिथिलाकी सगीत-प्रिय जनताके हृदयका स्पदन है।

स्त्री—उसमे स्त्रियोने योग दिया है।

पुरुष—पुरुषोने भी।

स्त्री—हिंदुओने भी स्वर-सधान किया है।

पुरुष—मुसलमानोने भी।

स्त्री—दोनो मिलकर सगीतकी साधना करते आ रहे है।

(शास्त्रीयसगीत तेज होकर धीरे-धीरे मद हो जाता है, तब धीरे-धीरे लोकगीतकी धुन प्रारभ होती है, जो पृष्ठभूमिमें चलती रहती है।)

पुरुष—परपरासे आती हुई लोकगीतोकी मधुर रागिनी भी उसके मनको प्रमुदित करती रहती हे।

स्त्री—गीतोकी यह धारा निश्छल मानव-हृदयसे निकलकर युगोसे मिथिलाकी धरतीपर प्रवाहित हो रही हे।

पुरुष—मिथिलाके इन लोकगीतोमे बडी मार्मिकता हे।

स्त्री—इनमे जीवनकी सब प्रकारकी भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। इनकी रागिनीमे आँखोके आँसू मुस्काते हैं, इनकी तानोमे आनदकी गूँज सुनाई पडती है।

ओर, इस प्रकार सगीतकी पृष्ठभूमिपर नैरेशन चलता रहता हे।

भावावेश और भावावेशके कार्य्योंकी व्यजना पृष्ठभूमि-सगीत-द्वारा वडी अच्छी तरह होती है। उदाहरणके लिए, यदि कोई भावावेशमे किसीको खोज रहा हो, दौडता हो, रुक जाता हो, फिर दोडता हो, तो इन सभी कार्य्योंको सगीत सूचित कर सकता हे। इससे गतिकी अभिव्यक्ति तो होती ही है, पात्रोकी मनोदशाका भी परिचय मिलता हे।

कभी-कभी ध्वनि-प्रभावोके साथ पृष्ठभूमि-सगीतकी योजना करके तीव्र प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। युद्ध अथवा आँधी-तूफानके ध्वनि-प्रभावोके साथ उन्हे प्रभावशाली बनानेवाला सगीत भी दिया जाता है।

जो नाटक किसी सगीतज्ञके जीवनपर आधारित होते है, उनके लिए तो सगीत एक अनिवार्य अग हो जाता है। पर वेसे नाटकोमे सगीतकी सीमा पर ध्यान देना चाहिए, नाटकपर सगीत इस प्रकार न छा जाय कि समूची नाटकीयता ही समाप्त हो जाय।

सगीतके व्यवहारसे ऐतिहासिक कालकी भी सूचना मिलती हे। प्रत्येक युगका अपना विशेष सगीत होता हे। आधुनिक युद्ध-सगीत प्राचीन युद्ध-सगीतसे सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार सगीत-द्वारा विशेष ऐतिहासिक कालका सकेत किया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त संगीत और कौन-से प्रयोजन सिद्ध कर सकता है, यह हम 'रेडियो-नाटक : सीमाएँ और सम्भावनाएँ' शीर्षक अध्यायके अंतर्गत देख चुके हैं।

संगीतकी योजना तो प्रस्तुतकर्ता (Producers) ही करते हैं, लेखक केवल संगीतके स्थलका निर्देश करता है। हाँ, लेखकको नाटक लिखते समय अपनी कल्पना और अनुभवके बलपर यह सोच लेना चाहिए कि संगीत कहाँ अनिवार्य और प्रभावशाली होगा। संगीतके-द्वारा वह जो प्रयोजन सिद्ध करना चाहता हो, उसका उल्लेख उसे उचित स्थानपर कर देना चाहिए।

संगीत रेडियो-नाटकका बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है, पर इसका उपयोग बहुत सोच-समझकर और उचित स्थलोंपर ही होना चाहिए। लुई मेकनीस-ने ध्वनि-प्रभावकी ही तरह संगीतके विषयमें कहा है कि जहा तक संगीत नाटकके प्रयोजनको सिद्ध कर सके वहीं तक उसका उपयोग होना चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि वही प्रधान हो जाय, और नाटकको संगीत-सम्मेलनमें बदल दे। स्वयं उसके शब्दोंमें—'The music, though much more conspicuous, must still be strictly functional, subordinated to the dramatic purpose of the whole, the music must not attempt to usurp the primary role and turn the whole thing into a concert'

रेडियो-नाटकके प्रकार

रेडियोसे प्रसारित होनेवाले नाटक अनेक प्रकारके होते है। विषय-वस्तुके अनुसार तो उनके भेदोकी सख्या अगणित हो जाएगी, जिनसे हमारा यहाँ कोई प्रयोजन नही है। शिल्पकी दृष्टिसे विचार करे, तो रेडियो-नाटकके सात भेद हमारे सामने आएँगे—

१—नाटक, २—रूपक, ३—रूपातर, ४—फैटेसी, ५—मोनोलॉग, ६—सगीत-रूपक, और ७—झलकियाँ।

रेडियो-नाटकके ये सभी रूप गद्यमे भी होते है, पद्यमे भी। कुछ नाटकोमे गद्य और पद्य दोनोका सम्मिलित उपयोग किया जाता है। इन सभी रूपोपर अलग-अलग विचार करना उचित होगा।

रेडियो-नाटक

'रेडियो-नाटक' शीर्षक तो बहुत व्यापक है। इसके अतर्गत, जैसा अभी ऊपर कहा गया, रेडियो-नाटकके सभी प्रकार चले आते है, लेकिन यहाँ हम केवल उन्ही रचनाओके सबधमे विचार करेगे, जिन्हे 'रेडियो-रूपक', 'रेडियो-फैटेसी' आदि नाम न देकर 'रेडियो-नाटक' ही कहा जाता है। रूपक, फैटेसी आदिकी विशेषताएँ समझ लेनेके बाद स्वत ज्ञात हो जाएगा कि 'रेडियो-नाटक'से क्या तात्पर्य है। ऐसे नाटक रगमचके नाटकोसे बहुत समानता रखते हुए भी मात्र श्रव्य होते है। यह सभव है कि इस सबध-मे जो बाते कही जायँ, वे रेडियो-नाटकके दूसरे प्रकारोके लिए भी सही हो।

सबसे पहले हम रेडियो-नाटककी विषय-वस्तुके सबधमे विचार करेंगे। पहला प्रश्न जो किसी नाटककारके मनमे उठता है, वह यह कि वह अपने नाटकमें क्या लिखे, किस विषयपर लिखे, कैसे लिखे, यह तो बादका

प्रश्न है। इस प्रश्नके उत्तरमे कहा जा सकता है कि रेडियो-नाटककारके लिए विषयका कोई बंधन नहीं है, वह मानव-जीवन और जगत्से सबंधित किसी भी विषयको अपने नाटकका आधार बना सकता है, फिर भी उसे कुछ बातोंपर अवश्य ध्यान देना पड़ेगा। पहली बात तो उसे यह समझनी होगी कि रेडियो-नाटक विभिन्न रुचियोके लोग सुनते है। यदि रगमचपर कोई धार्मिक लीला हो रही है, तो उसे देखने केवल धार्मिक प्रवृत्तिके ही लोग जाएँगे, लेकिन रेडियो-नाटक सुननेवाले व्यक्ति घर बैठे ही नाटक सुनते है, और यदि नाटक उनकी रुचिके अनुकूल न हुआ, तो वे रेडियो-सेट शीघ्र ही बद कर देगे। अत यदि रेडियो-नाटककार चाहता है कि अधिक-से-अधिक व्यक्ति उसका नाटक सुने, तो उसे अपनी विषय-वस्तु ऐसी रखनी पड़ेगी, जो विश्वजनीन हो, जो किसी दल, जाति, धर्म आदिके सीमित बधनोमे ही न घिरी हो। यदि वह मूल मानवीय राग-विरागोको अपने नाटकका विषय बनाये, तो वह सफल हो सकता है। उदाहरणके लिए, यदि वह दिखलाये कि किस प्रकार मनुष्यके हृदयमे कर्त्तव्य और भावनाका सघर्ष होता है, किस प्रकार मनुष्यके हृदयसे प्रेम, घृणा, ईर्ष्या आदिकी भावनाएँ उठती है, तो वह अपने नाटकको अधिक-से-अधिक व्यक्तियो तक पहुचा सकेगा। इसके लिए वह अपनी कथा इतिहास, पुराण अथवा वर्त्तमान सामाजिक जीवन, कहीसे ले सकता है।

इसके अतिरिक्त रेडियो-नाटककार उन समस्याओको भी अपना विषय बना सकता है, जिनमें अधिक लोगोकी दिलचस्पी है। युद्ध, वर्त्तमान सामाजिक कुरीतियो आदिपर भी बडे सुदर नाटक लिखे जा सकते है, लेकिन यहाँ भी यह याद रखना होगा कि ऐसे नाटकोमे भी जबतक मनुष्यके राग-विरागोका अकन न होगा, तबतक वे लोगोके मर्मको न छू सकेगे। मनुष्यके राग-विरागोकी सूक्ष्म तरगोको पकडना कविका ही काम है। इसीलिए लुई मैकनीसने कहा है कि रेडियो-नाटक लिखनेके लिए कविकी दृष्टि चाहिए—'For man, we should always

remember, is born poetic Poetry, in this sense at least, is more primitive than prose, it was easier on the ear and less strain upon the mind That is why radio drama—not because the medium is new but because of its primitive audience—might reasonably be expected to demand a poet's approach And poets on the whole do seem more at home on the air than novelists, say, or essayists'

मानवीय अनुभूतियाँ और मानवीय भावनाएँ ही नाटककी विषय-वस्तु बनाई जायँ, पर नाटकमे उन्हे इस प्रकार रखा जाय कि वह कुछ असाधारण-सा लगे। हम जानते हैं कि जिन विषयोसे हम बहुत अधिक परिचित हो जाते है, उनकी नवीनता समाप्त हो जाती है, फलत वे हमारा ध्यान आकृष्ट नही करती। यही बात नाटकके विषयोके साथ भी है। हम प्रतिपल कोई नई चीज चाहते हैं। जो नाटक हमारी इस आकाक्षाको तृप्त करेगा, वही सफल होगा। इसके लिए आवश्यक है कि नाटककार सामान्य विषय-वस्तुको भी असामान्य परिस्थितियोमे रखकर उपस्थित करे।

चूँकि हम लोगोके यहाँ जो नाटक लिखे जाएँगे, उनका उपयोग ऑल इडिया रेडियोमें ही होगा, नाटककारको आल इडिया रेडियोकी नीतिसे परिचित होना चाहिए। ऐसे विषयोसे भरसक बचनेका प्रयत्न करना चाहिए, जिनके सबधमे वाद-विवाद हो अथवा जिनसे किसी मत, धर्म, सप्रदाय या दलका विरोध होता हो। अश्लील एव भारतीय सस्कृतिकी विरोधी विषय-वस्तुको भी यहाँ प्रश्रय नही दिया जाता। ऑल रेडियोकी नीतिसे सबधित एक और बात यही कह दी जाय। ऑल इडिया रेडियो द्वारा किसी कपनी, समिति, पेटेंट सामान आदिका प्रचार नही किया जाता। अत ऑल इडिया रेडियोके लिए लिखित नाटकोमे 'लोडर' 'पिंटू होटल', 'पनामा ब्लेड'—जैसे नामोको नही आने देना चाहिए। इनके स्थानपर कल्पित नामोका सहारा लेना चाहिए।

सफल रेडियो-नाटककी पहली आवश्यकता है एक अच्छी कहानी। जबतक कथानक सशक्त न होगा, तबतक नाटक श्रोताओको प्रभावित न कर सकेगा। सशक्त कथानकका तात्पर्य ऐसे कथानकसे है, जो श्रोताओकी जिज्ञासा अततक जगाये रख सके। यह कलाकारकी प्रतिभापर निर्भर है कि वह कैसे कथानकका निर्माण करता है। इसके लिए कोई एक नियम नही दिया जा सकता। नाटककारको ध्यान इसी बातपर रखना है कि नाटकका घटना क्रम सुसबद्ध हो, उसमे कही ढीलापन न हो। उपन्यास, कहानियो और रगमच-नाटकोमे कुछ ढीलापन रहे, तब भी काम चल सकता है, पर रेडियो-नाटकमे नही। इसकी अवधि सीमित होती है, पात्र अदृश्य होते है, इसलिए इसका कथानक इतना शृखलाबद्ध होना चाहिए कि इसका प्रभाव तीरकी तरह हो। कथानकका एक केन्द्रबिदु होना चाहिए, जो श्रोताओके मर्मपर आघात कर सके। यह तभी सभव है, जब घटनाएँ इधर-उधर न बिखरे, सीधी गतिमे चले, स्पष्ट शब्दोमें, रेडियो-नाटकमे अप्रासगिक कथानक एव घटनाओके लिए कोई स्थान नही है। इसमे कोई भी घटना ऐसी न आनी चाहिए, जो मूल घटनाकी गतिको आगे न बढाये, उसकी सहायता न करे। हमे यह हमेशा याद रखना है कि रेडियो-नाटककी कला गतिशीलताकी कला है, गति ही इसका प्राण है। दृश्य-नाटकोमे स्थिर एव गतिहीन उपकरणोसे भी काम चल जा सकता है, क्योकि अपनी आँखोसे हम उन्हे देखते रहते है, पर रेडियो-नाटकमे इनका कोई महत्त्व नही है। नाटकोमे गत्यात्मकताका यह गुण तभी आ सकता है, जब छोटे-छोटे और गतिशील दृश्योका नियोजन किया जाय।

रेडियो-नाटककी नाटकीय एकता कभी भग नही होनी चाहिए। ऐसा करनेका उपाय यह है कि नाटककार सबसे पहले अपने कथानकको सक्षपमे लिख ले और यह देख ले कि उसकी सभी कडियाँ एक दूसरेसे अच्छी तरह जुडी हुई है, और उसमे श्रोताओकी जिज्ञासा बनाये रखनेकी पर्याप्त शक्ति है। इस सक्षिप्त कथानकके आधार पर नाटककारके मनमे समूचे नाटकका, प्रारभसे अततक, एक साफ ढाँचा

रहना चाहिए। उसे यह भी सोच लेना चाहिए कि किस दृश्यके लिए कितना समय देना उचित होगा। कहानी, उपन्यास आदिका लेखक इन बातोपर बिना विचार किये लिखना प्रारभ कर सकता है, और तबतक लिखता चला जा सकता है, जबतक उसकी रचना समाप्त न हो जाय। लेकिन रेडियो-नाटककी सीमा पहलेसे निर्धारित है। यदि नाटककार आधे घटेके लिए कोई नाटक लिख रहा है, तो उसे अपनी लिखावट और अपने अनुभवके आधारपर मालूम है कि उसे चौदह, पद्रह या सोलह पृष्ठोमे नाटक समाप्त कर देना है। वह इससे न एक पृष्ठ कम लिख सकता है, न एक पृष्ठ अधिक। इसीलिए रेडियो-नाटककारके मनमे समूचे नाटकका ढाँचा पहलेसे ही तैयार होना चाहिए, जिससे सभी दृश्य अपने-अपने स्थानपर नपे-तुले हो, और नाटक एक सतुलित रचना बन सके।

कथानक-निर्माणके समय लेखकको इस बातपर ध्यान देना है कि उसकी कथा-वस्तु श्रव्य माध्यमसे भलीभाँति व्यक्त की जा सके। उदाहरण-के लिए अतमे दिया गया नाटक 'सघर्ष' देखा जा सकता है। उसमे एक कलाकारकी समस्या अकित है। वह कलाकार चित्रकार भी हो सकता था, पर नाटकमे उसे शिल्पी रखा गया है। छेनी-हथौडेके ध्वनि-प्रभावोके द्वारा शिल्पीकी कथा रेडियो-नाटकमें प्रभावोत्पादक बनायी जा सकती है।

कथानक बन जानेके बाद सोचना आवश्यक है कि किस प्रकार उसे नाटकमे उपस्थित किया जाय, जिससे वह अधिक-से-अधिक प्रभावोत्पादक हो सके। रेडियो-नाटकका प्रारभ ही इस प्रकारका होना चाहिए कि कुछ पक्तियाँ सुननेके बाद ही श्रोताका मन उससे उलझ जाय और वह आगेकी बाते सुननेके लिए उत्सुक हो उठे। यह सफल रेडियो-नाटककी बहुत बडी विशेषता कही जायगी। इसके बाद घटनाओकी गति भी बडी सीधी और सरल होनी चाहिए, उसमें किसी प्रकारकी ऐसी उलझन न हो, जिससे श्रोताओको नाटकका विकासक्रम समझनेमे कठिनाई हो। लियोनेल गैमलिनने नये रेडियो-नाटककारोको सलाह दी है कि वे गति, सरलता और कल्पनापर ही अपने नाटकोको आधारित रखनेका अभ्यास करे।

रेडियो-नाटकमे पात्रोके चरित्रांकनपर भी विशेष ध्यान देना पडता है। पात्रोके-द्वारा ही रेडियो-नाटककार श्रोताओको प्रभावित करता है। पात्रोके विषयमे पहली बात यह है कि उनपर हम सहज ही विश्वास कर सके। वे पात्र हाँड-मासके सजीव मनुष्य हो, जिनमे विश्वास-सृष्टिकी पर्याप्त शक्ति हो। दूसरी बात यह कि पात्रोके चरित्रकी रेखाएँ साफ-साफ उभरी हुई होनी चाहिएँ। प्रत्येक पात्रकी अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ प्रदर्शित की जाएँगी, तभी रेडियो-नाटक सफल हो सकेगा। यह काम बहुत कठिन है। हमारे यहाँके अधिक रेडियो-नाटकोमे ऐसा नही हो पाता। श्री कृष्ण शुगलू ऑल इडिया रेडियोसे प्रसारित होनेवाले नाटकोके विषयमें लिखते है—'A complaint often voiced by our actors and producers is that there is little characterisation in the scripts given to them. The characters which they are supposed to portray and interpret, they say, are cliches which do not respond to the events around them Our actors want characters with three dimensions and a soul, just as our producers are keen on scripts which can be translated into sound and sound-patterns' (Aspects of Broadcasting in India) उनके अनुसार हमारे यहाँके नाटकोमें चरित्रांकनपर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। सफल रेडियो-[illegible]रके लिए इसपर ध्यान देना आवश्यक है। चरित्रोका विकास इस प्रकार होना चाहिए कि वे अपनी परिस्थितियोसे स्वत उद्भूत जान पडे, उनकी बातें प्रत्येक स्थितिमे स्वाभाविक ज्ञात हो। पात्रोकी एक-एक उक्ति, एक-एक क्रिया-द्वारा उनके चरित्रोपर प्रकाश पडना चाहिए। चूँकि रेडियो-नाटकको अपनी सीमित अवधिमें ही सब-कुछ करना पडता है [illegible]की कोई भी पंक्ति अथवा घटना निरर्थक नही

जानी चाहिए। उनकी सार्थकता इसीमें है कि घटनाओंकी गतिमें सहायता मिले और पात्रोका चरित्राकन हो।

रेडियो-नाटकके पात्रोके सबधमे एक बात यह भी याद रखनेकी है कि अधिक पात्रोके जमघटसे अनेक उलझने उत्पन्न हो जाती हैं। किसी पात्रका चरित्राकन अच्छी तरह नही हो पाता, श्रोताओंके लिए सब पात्रोके नाम याद रखना और उन्हे पहचानना कठिन हो जाता हैं। ये असुविधाएँ इसलिए होती हैं कि रेडियो-नाटकके पात्र अदृश्य होते हैं। अत आवश्यक है कि रेडियो-नाटकमे कम-से-कम पात्र रखे जायँ। साथ ही पात्र ऐसे हो कि उनकी आवाज और उनके बोलनेके ढगसे ही श्रोता उन्हे पहचान ले। अच्छा तो यह होगा कि पात्रोकी कल्पना ध्वनिके आधारपर ही की जाय। हम प्रतिदिन देखते है कि मनुष्योकी चारित्रिक वैयक्तिकता उनकी आवाज, बोलनेके ढग आदिसे प्रकट होती है। रेडियो-नाटककारका ध्यान इस बातपर विशेष रूपसे जाना चाहिए। तात्पर्य यह कि पात्रोमे जितनी अधिक व्यक्तिगत विशेषताएँ रहेगी, वे उसी हदतक नाटकको सफल बनानेमे समर्थ हो सकेंगे।

नाटकका एक आवश्यक अग कथनोपकथन भी है, जिसपर 'रेडियो-नाटकके उपकरण' अध्यायमे विस्तारके साथ विचार किया गया है।

रेडियो-नाटकके शीर्षकपर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक है। श्रोता सबसे पहले शीर्षक ही तो सुनता है। इसलिए शीर्षक इतना आकर्षक होना चाहिए कि वह श्रोताओंकी जिज्ञासा जगा दे। उदाहरणके लिए, अतमे दिये गये नाटकका शीर्षक देखिए—'वे अभी भी क्वाँरी हैं।' इसे सुनते ही श्रोताकी उत्सुकता जग जाएगी, वह जानना चाहेगा कि किसकी और कैसी कहानी है।

रेडियो-रूपक

'रेडियो-रूपक'* नामसे हिंदीमे अनेक प्रकारकी रचनाएँ लिखी जा रही है। इन रचनाओमे किसी एक निश्चित स्वरूप-विधानके दर्शन नही होते, पर एक बात इन सबमे सामान्यत यह दिखायी पडती हे कि इनमे एक या एकसे अधिक नैरेटर (जिन्हे वाचक, वाचिका, पुरुष-स्वर, स्त्री-स्वर आदि नाम दिये गये हैं) होते हे, जो बिखरी हुई घटनाओकी कडियाँ जोडते हैं, दृश्यो-परिस्थितियो आदिके विवरण देते है, किसी विपयपर वाद-विवाद करते हे, कोई कथा कहते हे, या ऐसे ही दूसरे-दूसरे प्रयोजन सिद्ध करते है। चूँकि ये नैरेटर किसी-न-किसी रूपमे सब रूपकोमे होते है, यह समझ लिया जाता हे कि जिन नाटकोमे नैरेटर होते हे, वे सब रूपक है, पर बात वास्तवमे यह नही है। 'रेडियो-रूपक'के स्वरूप-विधान और विशेषताओपर विचार करनेके पहले 'रेडियो-रूपक' नामके सबधमे विचार कर लेना उचित होगा।

'रेडियो-रूपक' नाम बहुत भ्रामक हे। इसमे आये 'रूपक' शब्दसे भ्रम होता है कि इसका सबध प्राचीन नाट्य-शास्त्रके 'रूपक' (जो दृश्य-काव्यका पर्याय था, और 'नाटक', 'नाटिका' आदि जिसके प्रधान भेदोमे थे) से हे। इस दृष्टिसे कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि रेडियोसे प्रसारित होनेवाले सब नाटक 'रेडियो-रूपक'के अतर्गत आ जाएँगे। पर यह मात्र भ्रम हे। 'रेडियो-रूपक'का प्राचीन नाट्य-शास्त्रके 'रूपक'से कोई सबध ~~नही है~~। वास्तवमे 'रेडियो-रूपक' शब्द अँग्रेजीके 'रेडियो-फीचर' (Radio Feature) के लिए व्यवहृत किया जा रहा है, यद्यपि यह कह सकना कठिन है कि 'फीचर'का अनुवाद 'रूपक' क्यो, कब और कैसे किया गया। अब तो 'फीचर'के लिए 'रूपक' शब्द रूढ हो गया है। अत 'रूपक'की विशेषताओको समझनेके लिए 'फीचर'के विपयमे जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा।

बी० बी० सी०मे 'फीचर' नाम 'डॉकुमेंट्री' (यथातथ्य सूचनाओपर आधारित नाटकीय रचना) के लिए व्यवहृत होता है। [1]'फीचर' नामसे लिखी जानेवाली रचनाओका अपना इतिहास है। आजसे लगभग पच्चीस वर्ष पहले बी० बी० सी०मे 'फीचर' नामकी रचनाएँ नहीं होती थी, लेकिन बी० बी० सी०का नाटक-विभाग रेडियो-टेकनीकके सबधमे नये-नये प्रयोग कर रहा था। उसे विशेष अवसरोके लिए विशेष कार्यक्रमोका आयोजन करना पडता था––ठीक वैसे ही, जैसे प्रजातत्र-दिवस, रवीन्द्र-जयन्ती, 'प्रसाद'-दिवस आदि विशेष अवसरोके लिए ऑल इडिया रेडियोके विभिन्न स्टेशनोसे विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जाते है, और, जिस प्रकार इन विशेष कार्यक्रमोकी सूचनाएँ 'Radio Highlight' या 'विशेष कार्यक्रम' शीर्षकोसे समाचारपत्रोमे दी जाती है, उसी प्रकार बी० बी०सी० के विशेष कार्यक्रमोकी सूचनाएँ पत्रोमे निकलती थी। इस तरह विशेष कार्यक्रमोको सामान्य कार्यक्रमोकी अपेक्षा अधिक प्रधानता दी जाती थी, और इन्हे लोग 'Featured Programme' कहते थे। बोलचालमे 'Featured' के 'd' का लोप हो गया, और लोग उसे 'Feature Programme' कहने लगे। पहले 'फीचर प्रोग्राम' का अर्थ वहाँ 'विशेष कार्यक्रम' ही था, लेकिन धीरे-धीरे उसके अतर्गत वे सभी रचनाएँ आने लगी, जो रेडियो-टेकनीककी दिशामे कुछ नये प्रयोगोके लिए लिखी जाती थी। इन प्रयोग-शील कार्यक्रमोका झुकाव कल्पना-प्रधान रचनाओकी ओर कम, और तथ्य-प्रधान रचनाओकी ओर अधिक था। उन्ही दिनो ग्रेटब्रिटेनमे डॉकुमेट्री फिल्मोका विकास हुआ, और रेडियोके फीचर प्रोग्रामोसे सबद्ध कुछ व्यक्ति उनका अनुकरण करने लगे। वे आवाजको रिकार्ड करनेवाली मशीनोके द्वारा यथातथ्य घटनाओके रिकार्ड तैयार कर लेते, और उन्हीके आधारपर नाटकीय रचनाएँ लिखकर प्रसारित करते। ये नये प्रकारकी रचनाएँ,

---

[1] "Documentaries are known in the B B C as Features'" —Felix Felton

जिन्हे 'रेडियो-डॉकुमेंट्री' कहा जाता था, बडी आकर्षक थी। फलत इस दिशामे अनेक प्रयोग होते रहे, और अब तो इनकी टेकनीक इतनी अधिक विकसित हो चुकी है कि बी० बी० सी०मे नाटक-विभागसे पृथक् इनके लिए एक अपना स्वतत्र विभाग है। तो, 'फीचर'का यही इतिहास है। यथातथ्य घटनाओ एव सूचनाओपर आधारित नाटकीय रचनाओ को ही अग्रेजीमे 'फीचर' कहा जाता है, और 'फीचर'को ही हमलोग हिंदीमे रूपक कहने लगे हे (कुछ लोग इन्हें 'आलेख-रूपक' या 'वस्तु-रूपक' भी कहते हैं), *यद्यपि यथार्थत 'फीचर' कही जानेवाली रचनाऐं इनी-गिनी ही* मिलेगी। बी० बी० सी० के पच्चीस वर्षोके परिश्रमकी उपलब्धिको इतनी जल्दी प्राप्त कर लेना शायद सभव भी नही था। हमारे यहा अभी साधनोका अभाव हे। हमारे यहाँके रेडियो-स्टेशनोमे रूपकोके लिए स्वतत्र विभाग भी नही है। उनके प्रसरणमे आर्थिक व्यय भी अधिक पडता है। लेखक भी उनकी टेकनीकसे अभी पूर्णत विज्ञ नही हैं। इस दिशामे जब सबका ध्यान जाएगा, तभी रूपकोकी कलाका विकास हो सकेगा।

अब हमे देखना चाहिए कि वास्तवमे रूपक है क्या? लुई मैकनीसने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है--"The radio feature is a dramatised presentation of actuality but its author should be much more than a repporteur or a camera-man, he must select his actuality material with great discrimination and then keep control of it so that it subserves a single dramatic effect"

तात्पर्य यह कि रूपक वास्तविकता का नाटकीकृत रूप है। वास्तविकताका मतलब यहाँ प्रधानत वास्तविक घटनाओ और तथ्योंसे है। नाटककार, कहानीकार आदि कलाकार कल्पित घटनाओको अपनी रचनाओका आधार बनाते हैं, यद्यपि उनके माध्यमसे व्यक्त विषय-वस्तु

अवास्तविक नही कही जा सकती, वह भी हमारे जीवनकी ही होतीहै। लेकिन रूपककारके लिए आवश्यक है कि वह वास्तविक घटनाओके आधार-पर ही अपने रूपककी रचना करे। यह बात एक-दो उदाहरणो-द्वारा सरलतामे समझी जा सकती है। यदि रूपककार मिथिलाके लोक-जीवनपर कोई रूपक लिख रहा हो, तो उसे वहाँके लोगोकी बातचीत, उनके गीत आदिके रिकार्ड तैयार कर लेने पडेंगे, जिससे वहाँके लोक-जीवनका वास्तविक परिचय वहाँके लोगोके शब्दोमे प्राप्त हो सके। यदि रूपककार दामोदर नदीकी योजनापर कोई रूपक लिखना चाहे, तो उसे उस योजना-मे लगे हुए लोगो, उस क्षेत्रमे रहनेवालो आदिके विचार उन्हीके शब्दोमे प्राप्त करने होगे (यह काम उन लोगोसे बातचीत करके और उसका रिकार्ड तैयार करके किया जाता है)। डोनल्ड बोडने रूपककारके लिए यही बात कही है—'What you are setting out to do is to extract in mint condition the thought at the back of the speaker's mind and mint condition means—his own words' इससे स्पष्ट है कि यह काम मात्र लेखकोके लिए असभव है। रेडियो-स्टेशनके अधिकारियो और लेखकोके सहयोगसे ही सफल रेडियो-रूपक प्रसारित हो सकते है।

अपने यहाँके रेडियो-स्टेशनोकी वर्त्तमान स्थितिमे इस प्रकारके रूपको-का लिखा जाना एक प्रकारसे असभव दीखता है। और, आजकल वर्त्तमान समस्याओ, योजनाओ आदिपर जैसी डाकुमेंट्री फिल्मे हमारे यहाँ बनती है, वैसी रेडियो-डाकुमेंट्री सचमुच ही असभव है। इससे ज्ञात होता है कि रेडियो-रूपकका क्षेत्र बहुत सीमित है, सीमित तो है ही, पर साधनोके अभावमे रूपक-रचनाके नये मार्ग खोजे गये है। लियोनेल गैमलिनने रेडियो-रूपकके विषयमें लिखा है—'Quite simply, it's a near-relation of the documentary film Based on actual fact, it is presented in dramatic form with real people as the actors, or sometimes with professio-

nal actors re-creating the characters of the original story or incidents '

इसके अनुसार वास्तविक व्यक्तियोंके बदले कभी-कभी अभिनेताओंसे काम लिया जा सकता है। गैमलिनने 'कभी-कभी' सभवत इसलिए कहा है कि कुछ रूपकोमे वास्तविक व्यक्तियोको अभिनेताके रूपमे उपस्थित करना हमेशा सभव नही होता। ऐतिहासिक रूपकोमे तो वास्तविक व्यक्तियोको पात्रके रूपमे उपस्थित करना बिल्कुल असभव है, ऐतिहासिक पात्रोका कार्य अभिनेता ही सम्पन्न कर सकते है। तात्पर्य यह कि गैमलिनके अनुसार कभी-कभी अभिनेताओको रूपकोमे रखा जा सकता है। पर हम लोगोके यहाँ जो रूपक प्रसारित किये जाते है, उनमे 'कभी-कभी' नही, बल्कि हमेशा ही वास्तविक व्यक्तियोका काय अभिनेता किया करते है। बहुत-से रूपकोमें तो पात्र रहते ही नही, केवल दो-तीन नैरेटर बारी-बारीसे किसी विषयपर भाषण देते है। उदाहरणके लिए, यदि किसी रूपकमें यह दिखलाना हुआ कि पिछले कुछ वर्षोमे हमारे राष्ट्रने किन-किन क्षेत्रोमे क्या-क्या विकास किये है, तो दो-तीन नैरेटरोके द्वारा विकास-सबधी सारी बाते कहला दी जाती है। ऐसे रूपकोमें नाटकीयता, सजीवता एव मनोरजकताका नितात अभाव रहता है। जबतक हमारे यहाँके रेडियो-स्टेशनोमे रूपकोके लिए विशेप प्रबध नही किया जाता, तबतक यही होता रहेगा।

चूकि 'रूपक' नाम उपर्युक्त दोनो प्रकारकी रचनाओके लिए व्यवहृत किया जा रहा है, हम उचित समझते है कि दोनोके लिए अलग-अलग नाम रखे जायँ। अच्छा होगा कि सही अर्थ मे फीचर या डाकुमेंट्री कही जानेवाली रचनाओको 'आलेख-रूपक' या 'वस्तु-रूपक' कहा जाय, और अन्यान्य सामान्य रचनाओको मात्र 'रूपक'।

अब हमें रूपकोके क्षेत्र एव उनकी विशेषताओपर विचार करना चाहिए। रूपककी जो परिभाषा ऊपर दी जा चुकी है, उसके अनुसार रूपकोमे सब प्रकारकी वास्तविकताओका नाटकीकृत रूप उपस्थित किया

जा सकता है। जिस प्रकार वास्तविकताओंकी कोई सीमा नहीं है, उसी प्रकार रूपकोंकी भी कोई सीमा नहीं है। उनका क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है, उनमें सब प्रकारके विषयोंका समावेश हो सकता है। उनके माध्यमसे हम किसी महापुरुषका जीवन-चरित उपस्थित कर सकते हैं, प्रदेश अथवा देश विशेषके लोगोंकी सभ्यता, संस्कृति एवं लोक-जीवनका परिचय दे सकते हैं, ऐतिहासिक महत्त्वके स्थानोंका इतिहास बतला सकते हैं, आविष्कार विशेषका इतिहास कह सकते हैं, संस्था विशेषका परिचय दे सकते हैं, तात्पर्य यह कि सब विषयोंपर रूपक लिखे जाते हैं। एच० आर० विलियम-सनके शब्दोंमें 'Under the somewhat colourless word "featuıe" we find ıncluded dıdactıc documentaıies and hıstoııcal ıeconstructıons, an encyclopaedıa entry bıought to lıfe and a gloıified parlouı game, a vıvıd pıece of yesteıday's secıet hıstoıy and a glımpse of to-day's odd occupatıons. We can learn about the law and the applıcatıons of scıence, we can dabble ın phılosophy and vıcarıously expeııence the thrılls of physıcal escape, we can see otheı lands thıough amusıng ındıvıdual eyes oı swıtch a geneıal focus on pıoblems at home, we can hear the voıces of the gıeat, lıvıng and dead, and we can estımate the ıntellects of the famous and populaı'

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी भी नीरस-से वास्तविक विषयको रूपकके माध्यमसे उपस्थित किया जा सकता है, पर उपस्थित करनेके ढंगमें मनोरंजकता और सजीवताका रहना अनिवार्य है, जिससे श्रोताओंका मन ऊबे नहीं और वे अंत तक रूपक सुनते रह सकें।

The B B C Quaıteıly (Autumn 1951)

इसके लिए आवश्यक है कि रूपकमें एकरसता न आने दी जाय। अनेक उपायोंसे ऐसा किया जा सकता है।

सबसे पहले तो लेखकको सोचना पड़ता है कि वह किस तथ्यको कितने कलात्मक ढंगसे उपस्थित कर रहा है। मान लीजिए, 'मिथिला' प्रदेश-पर एक रूपक लिखते समय हमें उसकी सीमा बतलानी है। साधारणतः एक नेरेटर-द्वारा कहलाया जा सकता है—'मिथिलाके उत्तरमें नेपाल है, दक्षिणमें गंगा नदी, पूर्वमें कोसी नदी है, पश्चिममें गंडक।' पर इन बातों-को दूसरे प्रकारसे भी रखा जा सकता है। डॉकुमेंट्री फिल्ममें यदि यह सीमा दिखलानी होती, तो दर्शकोंके सामने मिथिला और उसके निकटवर्ती प्रदेशोंका एक मानचित्र उपस्थित कर दिया जाता, और बारी-बारीसे चारों ओरके सीमावर्ती प्रदेशोंसे अलग कर दिया जाता, नेरेटर नेपथ्यसे अलग किये जानेवाले प्रदेशोंके नाम बतलाता जाता, और अंतमें दर्शकोंके सामने चित्रपटपर केवल मिथिलाका मानचित्र रह जाता। जैसा कि हम देख चुके हैं, फिल्मोंमें दृश्य साधन उपलब्ध है, पर रेडियोमें उनका नितांत अभाव है। यहां सब कुछ ध्वनियोंके माध्यमसे ही परतुत करना होता है। अतः रेडियो-रूपकमें मिथिलाकी सीमा उसके सीमावर्ती प्रदेशोंमें बोली जाने वाली भाषाओंसे दी जा सकती है। 'मिथिला' रूपकमें यह सीमा इसी प्रकार दिखलायी गयी थी—

स्त्री नैरेटर—यह मिथिलाकी भूमि है, जिसके उत्तरमें पड़ोसी राष्ट्र नेपाल है,

नेपाली-स्वर—कती राम्रो छ हाम्रो देश नेपाल! हिमालयका उपत्यकामाँ बसेको, बागमतीको लहर लहराउदैं रहेछन् हा! भारत-प्रसिद्ध पशुपतिनाथको मंदिर यहीं छन्-इछन्!

(नदीकी धाराकी आवाज)

पुरुष नैरेटर—यह मिथिलाकी भूमि है, जिसके पूर्वमें कोसी नदी प्रवाहित होती रहती है, और उसके बाद,

(एक बंगला-गीतका थोडा-सा अश, उसकी समाप्तिके साथ ही पृष्ठभूमिमें जल-धाराकी आवाज)

स्त्री नैरेटर—पश्चिममें गडककी धारा कल-कल-निनाद किया करती है, जिसके पार

भोजपुरी-स्वर—जी हँऽ, ई कुँअरसिंघके जवार हऽ, जिन्हिका दहडसे दुसमनके करेजा दरकि जात रहल हा। जानत नइखीं ? ई है नु भोजपुरीके इलाका हऽ।

(जलधाराकी आवाजका तेज होकर फिर मद हो जाना)

पुरुष नैरेटर—दक्षिणमे पुण्य-सलिला गगा है, जिसके दूसरे तटपर है मगध,

(एक मगही गीतका थोडा-सा अश)

स्त्री नैरेटर—नेपाली, बँगला, भोजपुरी और मगही भाषावाले प्रदेशोंके बीचमे यह है मिथिलाकी भूमि, जिसकी सीमा बृहद् विष्णु पुराणके अनुसार इस प्रकार है—

स्वर—*गगाहिमवतोर्मध्ये नदीपञ्चदशान्तरे।*

तैरभुक्तिरिति ख्यातो देश परमपावन ॥

कौशिकी तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै।

योजनानि चतुर्विश व्यायाम परिकीर्तित ॥

पुरुष नैरेटर—इसीका पथिलीमें एक कविने इस प्रकार कहा है-

स्वर—गगा बहथि जनिक दक्षिण दिशि पूर्व कोशिकी धारा।

पश्चिम बहथि गडकी उत्तर हिमवत वल-विस्तारा ॥

कमला त्रियुगा अमृता धेमुरा वागमती कृतसारा।

मध्य बहथि लक्ष्मणा प्रभृति से मिथिला विद्यागारा ॥

उदाहरणसे स्पष्ट है कि किसी नीरस तथ्यको किस मनोरजक ढगसे [illegible]त किया जा सकता है। इससे एकरसता नही आने पाएगी, और [illegible]ान्य विवरणकी अपेक्षा इसमे प्रभावोत्पादकता भी अधिक रहेगी।

एक दूसरे प्रकारका उदाहरण 'मजिलकी ओर' रूपकसे देखिए—

पुरुष-नैरेटर—आज देशके सामने अनेक समस्याएँ है—

आदमी१—कहा जा रहे हो जी ?

आदमी२—गगा बाबूके यहाँ ।

आदमी१—क्या बात हे ?

आदमी२—मोहनको लडका हुआ हे ।

आदमी१—बडी खुशीकी बात है ।

(सक्षिप्त संगीत)

स्त्री—सुना तुमने ?

पुरुष—क्या ?

स्त्री—मालतीको लडकी हुई है ।

पुरुष—सचमुच ?

स्त्री—हाँ,हाँ । झूठ थोडे ही कहती हूँ ।

पुरुष-नैरेटर—जन-सख्या बढती जा रही है । उसके लिए भोजन, वस्त्र और निवासका प्रबध करना हे ।

इस प्रकार छोटी-छोटी बातोको नाटकीय रूपमे रक्खा जा सकता हे ।

रूपकमे एकरसता न आने देनेके लिए एक-दो और बातोपर ध्यान देना पडता हे । जहाँ एकमे अधिक नैरेटरोकी आवश्यकता हो, वहाँ स्त्री और पुरुष दोनो नैरेटरोको बारी-बारीसे रखकर स्वरकी एकरसतासे बचा जा सकता हे ।

अनेक ऐसे स्थल भी आते है, जहाँ केवल नैरेटरोके द्वारा ही बहुत-सी बाते कहलानी पडती है । वैसे स्थलोपर यदि कुछ नैरेटर बारी-बारीसे लबे-लबे उद्धरण बोलना शुरू कर दे, तो रूपकका प्रवाह रुक जाएगा, उसमे एकरसता आ जाएगी, और श्रोता उससे ऊब जाएँगे । उसमे नाटकीयताका नितात अभाव रहेगा, और उसे रेडियो-रूपक कहा ही नही जा सकता । वह तो वास्तवमे किसी बडे निबधको कुछ नैरेटरो-द्वारा पढवा देना है । फेलिक्स फेल्टनने इस सबधमें अपना अनुभव लिखा है—"The trouble about multiple narration is that it can easily be-

come a cover for inadequate dramatic treatment I was once sent a "dramatised" script, consisting almost entirely of a slab of narrative divided between five different voices If this is all there is to it, radio-dramatic writing is easy You need do no more than number the sentences of an "Encyclopaedia Britannica" article, and send it off to the typist'

अत ऐसे अवसरोपर यह सोचना आवश्यक हो जाता है कि बिना नीरस बनाये अपनी बात किस तरह कही जाय। 'मिथिला'से ही एक उदाहरण देखिए—

पुरुष-नैरेटर—मिथिलाके पास भाव-प्रवण हृदय ही नही, प्रखर मस्तिष्क भी है।

स्त्री-नैरेटर—इसने तन्मयताके गीत तो रचे ही हैं।

पुरुष-नैरेटर—दर्शनकी भी साधना की है।

स्त्री-नैरेटर—ईसाके एक हजार वर्ष पूर्व यहा वैदिक ज्ञानके केन्द्र थे।

(किसी वैदिक ऋचाका समवेत पाठ)

स्त्री-नैरेटर—मिथिला बडे-बडे दार्शनिकोकी भूमि है।

पुरुष-नैरेटर—न्यायसूत्रोके रचयिता ऋषि गौतम यही हुए थे।

स्त्री-नैरेटर—वैशेषिक-दर्शनके जन्मदाता कणाद की जन्म-भूमि यही है।

पुरुष-नैरेटर—मीमासा-दर्शनके प्रवर्त्तक जैमिनि यही रहते थे।

स्त्री-नैरेटर—साख्य-शास्त्रके निर्माता कपिलका निवास मिथिलामे ही था।

पुरुष-नैरेटर—वेदात-दर्शनके सर्वप्रथम प्रणेता व्यासकी भूमि मिथिला ही है।

ध्वनि-प्रभावोकी सहायता ली जाती है। उदाहरणके लिए 'मजिलकी ओर' रूपकसे एक उद्धरण दिया जाता है--

(पृष्ठभूमिमें मशीनकी हल्की आवाज)

स्त्री---खादके लिए भारतको अबतक दूसरे देशोपर निर्भर करना पड रहा था, लेकिन खाद बनानेके लिए अब सिदरीमे कारखाना खुल चुका है।

(मशीनकी आवाज तेज होकर, फिर मद हो जाती है, और पृष्ठभूमिमें चलती रहती है)

पुरुष१---यह सिदरीका कारखाना है। यहाँ अमोनियम सल्फेट तैयार किया जाता है। यह खाद खेतोमे पडकर उन्हे नयी शक्ति देगी।

पुरुष२---भारतके आर्थिक निर्माणमे सिदरीका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इससे विदेशोको जानेवाले दस करोड रुपयोकी वार्षिक बचत होगी।

स्त्री---दस लाख टन अनाजकी उपज बढेगी।

पुरुष१---इसकी नीवपर रासायनिक उद्योगोके बडे-बडे कारखाने खुलेगे।

स्त्री---इसकी बनी हुई खाद इतनी सस्ती होगी कि साधारण किसान उसे सरलतासे खरीद सकेगे।

(मशीनकी आवाज बद हो जाती है)

ध्वनि-प्रभावोके साथ-साथ रूपकोमे समुचित सगीतका भी व्यवहार किया जाता है। इनसे अपेक्षित वातावरणकी सृष्टि करनेमे बहुत सहायता मिलती है।

इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि रूपकोके लिए सजीवता, सरसता, मनोरजकता, नाटकीयता, गतिशीलता और समुचित वातावरणकी सृष्टि अनिवार्य है। लेकिन किसी रूपकके विभिन्न अशोमें इन विशेषताओका

होना उसकी सफलताके लिए पर्याप्त नही है। अपने सपूर्ण रूपमे रूपकको सुसगठित रचना होना चाहिए। उसका सपूर्ण सगठन इस प्रकारका होना चाहिए कि उसमे, जैसा कि लुई मेकनीसके एक उद्धरणमे ऊपर कहा गया है, एक नाटकीय प्रभावकी सृष्टि होती हो। सामान्यत रूपकोके विषय बहुत विस्तृत और उलझनवाले होते है, और उनके आधारपर सफल रूपक लिख सकना कुशल रूपककारका ही काम है। लेखकके सामने अनेक समस्याएँ आती है कि न, जाने रूपकके लिए किसी विषयके अन्तर्गत आने-वाली घटनाओमेसे किन्हे ले, किन्हे छोड दे, किन बातोको किन स्थानोपर कहे। इन समस्याओपर विचार करते समय लेखकके ध्यानमे हमेशा यह रहना चाहिए कि सफल रेडियो-रूपक वही है, जो अपने सपूर्ण रूपमे श्रोताओको प्रभावित कर दे, उनके मानस-पटपर एक स्थिर एव स्पष्ट रेखा खीच दे। इसके लिए कोई एक निश्चित उपाय नही बतलाया जा सकता। रूपकोके विषयोके साथ-साथ उनकी अभिव्यक्तिका ढग भी बदलता रहेगा। लेकिन सब रूपकोकी गति सीधी एव स्वाभाविक होनी चाहिए। उनका विकास ऐसा कदापि न होना चाहिए कि श्रोताओको अनुभव हो, जैसे एक स्थलसे दूसरे स्थलपर जानेके लिए छलाँग मारी जा रही है। इसके विपरीत रूपकमे प्रतिपाद्य विषय-वस्तु एव घटनाओका विकास क्रमिक एव स्वाभाविक होना चाहिए। तभी उससे एक निश्चित प्रभाव की सृष्टि हो सकेगी, अन्यथा वह रूपक, जिसमे कोई नैरेटर यत्र-तत्र बिखरी हुई घटनाओको जोड भर देता है, रूपक न होकर, रूपकका विडबना मात्र होगा।

कुछ रूपक वास्तविक घटनाओ और कल्पनाके मिश्रणसे भी लिखे जा सकते है। कोई ऐसा कथानक तैयार कर लिया जा सकता है, जो प्रतिपाद्य विषय-वस्तु एव घटनाओके साथ-साथ उनके समानातर चलता रहे, अथवा उससे पूर्णत सबद्ध हो। उदाहरणके लिए, यदि सरकारकी 'अल्प-बचत-योजना'पर कोई रूपक लिखना हो, तो किसी ऐसे पति-पत्नीकी कल्पना की जा सकती है, जो अपने एक निकट सबधीकी मृत्युसे शोकाकुल और चिंतित

है। उनके निकट सबधीने अपने जीवनमे काफी रुपये कमाये, पर भविष्यके लिए कुछ नही बचाया। अब उसकी मृत्युके बाद उसकी विधवा पत्नी और तीन बच्चे निराधार है। हमारे कल्पित पति-पत्नी इन्ही बातोको सोच-कर चितित होते है, तवतक एक जानकार व्यक्ति आता है और उनकी चिताका कारण समझकर उन्हे अल्प-बचत-योजनाकी उपयोगिता, नियम आदिसे परिचित कराता है। यहाँ नैरेटरका काम यह परिचित व्यक्ति ही करेगा। इस प्रकार वास्तविकता एव कल्पनाको मिलाकर भी रूपक लिखे जा सकते है।

अब हम रूपकोकी भाषा-शैलीपर आते है। जैसा प्रारभमे कहा गया है, रूपकोमे वास्तविक व्यक्तियोको ही पात्र बनाया जाता है। अत उन व्यक्तियोके व्यवसाय, सस्कार, शिक्षा-दीक्षा आदिके अनुरूप ही उनकी भाषा होनी चाहिए। स्वाभाविकता तो तब आती है, जब उनकी भाषा, उनके बोलनेके ढग, उनके लहजेके रिकार्ड तैयार करके, उन्हीके आधारपर रूपक लिखे जाते है। पर चूँकि हमारे यहाँ अभी साधनोका अभाव है, इस सबधमें यही कहा जा सकता है कि रूपकके कथनोपकथन की भाषा यथासभव स्वाभाविक और पात्रोके अनुरूप होनी चाहिए। नैरेटरो-की भाषा भी साहित्यिक और अलकृत होनेके बदले सरल, स्पष्ट एव वाता-वरण तथा विषय-वस्तुके अनुरूप हो, तभी रूपक सफल हो सकता है।

आलेख-रूपक अथवा डॉकुमेंट्रीके सबधमे यह याद रखना चाहिए कि वह लेखक, प्रोड्यूसर, इजीनियर आदिके सहयोगका फल है। पहले उसकी एक सुनिश्चित रूप-रेखा बनायी जाती है, उसके आधारपर इटरव्यू, वक्तव्य, गीत आदिके रिकार्ड तैयार किये जाते है। इस प्रकार सामग्री-सग्रहके बाद उसके सपादन एव सयोजनका कार्य होता है। पर्याप्त काट-छॉट, जोड-घटावके बाद आलेख-रूपकको अतिम रूप मिलता है।

रूपक लिखना सचमुच अपनेमे ही एक स्वतत्र कला है, जो नाटक आदिके स्वरूप-विधानोसे पूर्णत पृथक् है। श्री विलियमसनका तो कहना है कि रेडियोके पास यदि कोई अपनी कला है, जिसके स्वरूप-विधानका

निर्माण केवल रेडियोने किया है, तो वह रूपक है। (विलियमसनका मतलब आलेख-रूपकसे है)। रेडियोसे प्रसारित की जानेवाली अन्य रचनाएँ तो बहुत अंश तक पहलेसे उपलब्ध रचनाओंके रूपातरित स्वरूपमात्र है। उनके अनुसार केवल रेडियोके लिए लिखनेका अर्थ है रूपक लिखना, रूपक प्रस्तुत करना प्रस्तुतकर्त्ताकी सबसे बडी कुशलता है, और रूपक सुननेका अर्थ है रेडियो-सेट रखनेकी सार्थकता सिद्ध करना।[१] श्री विलियमसनका कथन बी० बी० सी० के गत पच्चीस वर्षोके प्रयोगोके फलस्वरूप प्राप्त रूपकोकी कलापर आधारित है, पर अपने यहाँकी स्थिति देखते हुए अभी हम वैसा नही कह सकते। पर उनका कथन सत्य है, और अपने यहाँ रूपकोकी कलाका विकास होनेपर हम उसकी सार्थकता समझ सकेगे।

---

१ The feature is the radio art and all other forms are slightly ersatz To write for radio (in distinction from writing something that can be broadcast) means to write a feature To produce a feature implies the ability to be able to produce anything else as part of one's apprenticeship for the final test of craftsmanship To listen to a feature properly written and produced is to experience again, over a quarter-of-century after, something of that pristine conviction that it was worth while having a wireless

—Reflections on Radio Features

(The B. B. C Quarterly, Autumn 1951)

रेडियो-रूपान्तर

रेडियोके लिए मौलिक नाटक और रूपक तो लिखे ही जाते है, सुप्रसिद्ध लेखकोंके रगमच-नाटको, कहानियो और उपन्यासोके रूपोमे भी इस प्रकार के परिवर्तन किये जाते हैं कि वे रेडियोके श्रव्य माध्यमसे सरलतापूर्वक प्रसारित किये जा सके। रेडियो-द्वारा इन्हे प्रभावोत्पादक ढगसे प्रस्तुत करनेके लिए इनके रूपोमे परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। मौलिक रगमच-नाटको, कहानियो और उपन्यासो तथा उनके रेडियो-रूपान्तरोमे माध्यमका अतर पड जाता है। रगमचके नाटक दर्शकोके लिए लिखे जाते हैं, कहानियो और उपन्यासोकी रचना पाठकोके लिए होती है। इन सब रचनाओका प्रभाव आँखोके द्वारा ग्रहण किया जाता है, पर रेडियो-नाटको का प्रभाव हम केवल कानोके द्वारा ही ग्रहण करते है। यही बात नाटक-विभाग (बी० बी० सी०)के डायरेक्टर भाल गिलगुड इस प्रकार कहते हैं— 'Broadcasting is simply another medium of telling a story The novelist uses the medium of words, the theatre uses the medium of living actors, the cinema uses the medium of the camera and broadcasting uses that of the microphone.' माध्यम बदल जानेके कारण उपर्युक्त रचनाओके रूपोमे भी परिवर्तन करने पडते हैं। रचनाओका रेडियो-रूपान्तर लिखते समय किन बातोपर विशेष ध्यान देना पडता है, रूपान्तरकारके सामने कैसी-कैसी समस्याएँ आती हैं, और उनका समाधान किस प्रकार किया जाता है, इन बातोपर हम विचार करेंगे। सब प्रकारकी रचनाओके रूपान्तरकी समस्याएँ एक ही प्रकारकी नही होती, इसलिए मैं उपर्युक्त रचनाओको अलग-अलग लेकर उनके रूपान्तरपर प्रकाश डालूँगा।

रंगमंच-नाटकोंके रेडियो-रूपान्तर

रूपान्तरकारका काम किसी रगमच-नाटकको रेडियो-माध्यमके अनुरूप बना देना है, कथानकमे परिवर्त्तन करनेकी उसे पूर्ण स्वतन्त्रता नही है। फेलिक्स फेल्टन अपनी पुस्तक 'The Radio Play' मे इस विषयपर लिखते है—'The adaptor's work is likely to be unobtrusive rather than spectacular, since his intention will have been to keep the play as nearly as possible in its original form, where, therefore, he has made alterations in the original text, we may be sure that he has had good many reasons for doing so' तात्पर्य यह कि रूपान्तरको यथासभव मौलिक नाटकके निकट रहना चाहिए, और रूपान्तरकार नाटकके मौलिक रूपमे यदि कोई परिवर्त्तन करता है, तो इसके लिए उसके पास कोई कारण होना चाहिए।

एक उदाहरणके द्वारा यह बात स्पष्ट की जा सकती है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी लिखित रगमच-नाटक 'अम्बपाली'के प्रथम अकका प्रथम दृश्य देखिए। एक आम्रकुजमे किशोरी अम्बपाली झूलेपर झूल रही है और गा-रही है—'मेरी श्यामाने बशी फूँकी, कोइलिया क्यो कूकी ?' गीत समाप्त होते ही उसकी सखी मधूलिका आती है, और दोनो हास-परिहासमे मग्न हो जाती है। इसके बाद दोनोका वार्त्तालाप इस प्रकार है—

मधूलिका—अम्बे, आज भोर-भोर तूने कुछ देखा है क्या ? या रातमे कोई सपना देखा था ?

अम्बपाली—तेरा मतलब ?

मधूलिका—मतलब है, तेरे इस गानेसे।

अम्बपाली—क्या बिना सपने देखे आदमी कुछ गा नही सकता ? और, सच पूछ, तो क्या ऐसी कोई भी रात होती है जिसमे आदमी सपने न देखे या ऐसा कोई भोर आता है जिसमे आदमी कोई रूप न देख पाये ?

मधूलिका——लेकिन, सपने-सपनेमे फर्क होता है और फर्क होता है रूप-रूपमे, अम्बे ! एक सपना होता है जिसमे आदमी डरकर आँखे खोल देता है और एक सपना ऐसा होता है, जिसमे जग जानेके बाद भी आदमी आँख मूद लेता है कि एक बार फिर उसकी कडियाँ जोड सके ! समझी ?

अम्बपाली——हूँ ।

मधूलिका——यो ही एक रूप होता है जिसको देखकर आँखे मुड जाती या मुँद जाती है और दूसरा रूप होता है, जिसपर नजर पडते ही पलके और बरौनियाँ काम करना छोड देती है, नजरोमे टकटकी बँध जाती है और दिमाग चिल्लाता है, आह, ये आँखे इतनी छोटी क्यो हुई ? बडी होती, इन्हीमे उसे रख लेता ! समझी ?

अम्बपाली——हूँ ।

मधूलिका——हूँ ! हूँ क्या ?

अम्बपाली—यही कि रूप-रूपमे फर्क होता है और फर्क होता है सपने-सपनेमे । यही न ? लेकिन, एक बात कहूँ मधु, मुझे याद नही कि कभी बुरे सपने भी देखे होऊँ, और मेरी आँखोने जिसे देखा, सुन्दर ही पाया !

मधूलिका——(**आश्चर्यमयी मुद्रासे**) अच्छा ?

अम्बपाली——हाँ, हाँ, सच कहती हूँ, सखि ! न जाने क्या बात है ? या तो कुरूप चीजे मेरी आँखोके सामने आती ही नही, या मेरी नजरे उनका प्रतिबिम्ब ग्रहण नही करती

मधूलिका——(**बात काटकर किञ्चित् मुस्कानसे**) या तेरी नजर पडते ही कुरूप भी रूपवान हो उठते है ?

अम्बपाली——दिल्लगीकी बात नही है, मधु ! मने आजतक दुनियामे सिर्फ सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य देखा है——निर्जीव प्रकृतिसे लेकर प्राणवान प्राणी तक ! और, सपने ? उनकी बात मत

पूछ। मधु, आदमी जागना क्यो चाहता है ? सोये रहो, सपने देखते रहो, क्या इससे भी कोई दूसरी अधिक सुन्दर चीज हो सकती है ? जागरण ! **(उपेक्षाके शब्दोमें)**—जागरण आदमीका वरदान है या अभिशाप, रे !

मधूलिका—आज तुझे यह क्या हो गया है ? तू किस सपनेके लोकमे है ?

अम्बपाली—सपनेका लोक ! आह, मै हमेशा उसीमे रह पाती, मेरी मधु ! जब बच्ची थी, सपनेमे देखती—परियोका देश, मणियोका द्वीप, उडनखटोलेकी सैर ! और आज-कल ? ज्योही ऑखे लगी कि मै पहुँच गयी उस सुनहली घाटीमे जहाँ इन्द्रधनुषका मेला लगा रहता है, जहाँ जवानी तितलियोके रूपमे उडती रहती है, या उस देव-लोकमे जहाँ सुनहले पखवाले देवकुमार नीलमके पखो-वाली अप्सराओके अगल-बगल, आगे-पीछे मँडराते फिरते है, या कम-से-कम उस रूपदेशकी राजसभामे, जहाँ कलँगीवाले राजकुमारोकी भरमार है—जहाँ नृत्य है, सगीत है, और है **(अचानक सिहर उठती है)** मधु, मधु, तू क्या ऐसे सपने नही देखती ?

मधूलिका—मै देखती या नही देखती, बात मत बहला। बता तूने रात भी क्या कुछ ऐसा ही सपना देखा है ?

अम्बपाली—रात जो देखा, उसकी मत पूछ ! उफ, बिलकुल अद्-भुत, अपूर्व ! उसकी यादसे ही शर्म आती है, सखि !

मधूलिका—शर्म ! सपनेमे शर्मकी कौन-सी बात री !

अम्बपाली—नही मधु, जिद न कर ! सचमुच उसकी यादसे ही मै शर्मसे गड जाती हूँ !

मधूलिका—**(व्यग्यके शब्दोमें)** समझी, समझी, तभी तो भोर-भोर यह गीत ! आखिर अचानक आकर उसने तुझे गुदगुदा

ही दिया—'किसने अचानक गुदगुदाया **(गानेका व्यंग्य करती है)**

अम्बपाली—लेकिन, तेरा यह निशाना ठीक नहीं बैठा, मधु! यह वह बात नहीं, जिसकी तू कल्पना भी कर सके!

मधूलिका—मेरी कल्पनाकी रानी! मैं, और वहाँ तक पहुँच सकूँ? खैर, बता, तूने क्या देखा?

अम्बपाली—तेरी जिद, अच्छा सुन (**वह चकित नेत्रोंसे इधर-उधर देखती है कि कोई दूसरा तो नहीं है और फिर धीमे स्वरमें कहने लगती है**) रात देखा, कहीं अजीब देशमें पहुंच गयी हूँ, जहाँ चारों ओर फूल-ही-फूल है। जिन्हें हम गूलर-पाकड़-पीपल कहते हैं, उनमें भी फूल लगे हैं—चम्पाके, गुलाबके, पारिजातके। जमीनपर घास-फूसकी जगह फूलोंकी पखडियाँ बिछी है और धूलकी जगह पीत-पराग बिखरा है। हवामें अनहद संगीत—वातावरणमें अजीब रंगामेजी। सामने एक तालाब देखा, जिसमें कमलके सहस्र-सहस्र फूल खिल रहे—लाल, श्वेत, पीत, नील! और, दर्पणोपम निर्मल नील जल। मुझे गरमी महसूस हो रही थी। क्यों न तालाबमें नहा लूँ? इधर-उधर देखा, कोई नहीं। मैंने झटपट कंचुकी उतार दी, बाह्य परिधान खोलकर रख दिया। दौड़कर किनारे पहुँची। जलमें कूदनेके लिए झाँका, तो अपना सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब देखा! (**सिहरती हुई**) अपना ही प्रतिबिम्ब! लेकिन उसे देखते ही, मधु, नसोंमें खूनके एक अजीब ज्वारका अनुभव हुआ और आधी बेहोशीमें ही अपनेको पानीमें फेंक दिया।

मधूलिका—(**विस्मयमें**) अजीब सपना!

अम्बपाली—उसका अनोखापन तो अब आता है, रे। पानीमें धँस-

कर मैं तैरने लगी और बढ़ी एक नील कमलकी ओर। किन्तु यह क्या? यह तो कलँगीवाला राजकुमार है और मुझे अपनी ओर आते देख वह मुस्करा रहा है। मैं चकित हुई! दूसरे कमलोकी ओर देखा, वैसे ही कलँगी-वाले राजकुमार, हजार-हजार! और, सब-के-सब मेरी ओर देखकर सिर्फ मुस्करा नही रहे, बल्कि ठठा-ठठाकर हँस रहे! मैं नगी---उफ, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे बाहर होऊँ? इससे तो डूब मरना अच्छा। डूब मरूँ---मरूँ---इसी उम्रमे! तो? तो? डुबकी मारकर शर्म छिपानी चाही--एक डुबकी, दूसरी डुबकी, तीसरी डुबकीमे मालूम हुआ, सास घुट रही है। अच्छा हुआ, नीद टूट गई। जगी तो पाया, पसीने-पसीने थी।

मधूलिका---निस्सन्देह, विचित्र सपना देखा है तूने। लेकिन, समझती है, इसका मानी क्या है?

अम्बपाली---क्या समझूँ? एक दिनका सपना हो तो, कुछ समझा जाय? जिसकी जिन्दगी ही सपनेकी है, वह किस-किसका मानी लगाये?

मधूलिका---लेकिन इस सपनेका तो खास महत्त्व है। वसतके प्रथम दिनका यह सपना साधारण सपनोमे नही है!

अम्बपाली---तो क्या मानी है इसका?

मधूलिका---वही, जो उस दिन ज्योतिषीजीने तेरे हाथकी रेखाएँ देखकर कहा था---"तेरे चरणोपर हजार-हजार राज-कुमारोके मुकुट लोटेगे।"

अम्बपाली---चुप, चुप! मैं तो उसकी कल्पनासे ही सिहर उठती हूँ मधु! "हजार-हजार राजकुमार!" उफ, वह भी कोई जिन्दगी होगी। मेरा तो अकेला.

मधूलिका—'मेरा तो अकेला अरुणध्वज !' क्यो ? यही न कहना चाहती थी ? **(रहस्यपूर्ण ढगसे मुस्कराती है)**

इसके बाद इसी दृश्यमें अरुणध्वज आता है, तीनोमे बाते होती है। अरुणध्वज वैशालीके फाल्गुनी उत्सवमे चलनेका प्रस्ताव रखता है, और तीनोका वैशाली जाना एक प्रकारसे निश्चित हो जाता है।

'अम्बपाली'का रूपान्तर करते समय इस प्रथम दृश्यको बिलकुल भिन्न प्रकारसे उपस्थित किया गया है, और इस प्रकारके परिवर्त्तनके लिए अनेक कारण है। पहले रूपान्तरित अश देखिए—वाद्य-सगीतके बाद दृश्य इस प्रकार प्रारभ होता है—

मधूलिका—क्यो अम्बे, सो गयी ? **(हल्की हँसी)** अभी कह रही थी, कहानी सुनाओ मधु, अभी सो गयी। अच्छा, शातिसे सो, स्वप्नोके रगीन ससारमे विचरण कर। मै भी सो रही हू। **(जम्हाई लेनेकी आवाज)**

(पृष्ठभूमिमें हल्का स्वप्न-सूचक सगीत)

कल्पना—**(दूरसे)** अम्बे !—अम्बे !

अम्बपाली—कौन ? तुमने मुझको पुकारा ?

कल्पना—हाँ अम्बपाली !

अम्बपाली—कौन हो तुम ?

कल्पना—मुझे नही पहचानती ? तुम्हे कबसे नये-नये देश दिखाती रही हूँ ! परियोका देश दिखाया है मैने तुम्हे, मणियोके द्वीपपर तुम्हें ले गयी हूँ मै। मुझे नही पहचानती ?

अम्बपाली—हाँ-हाँ, कुछ-कुछ पहचान तो रही हूँ।

कल्पना—दुत् पगली ! पहचानने, न पहचाननेसे क्या ! चल मेरे साथ, आज फूलोका देश दिखाऊँगी।

अम्बपाली—फूलोका देश ?

कल्पना—हाँ अम्बे, ऐसा देश तूने देखा न होगा। चल, उड चल मेरे साथ !

अम्बपाली——अच्छा !

(**ऊपर उठता हुआ संगीत**)

अम्बपाली——यह क्या देख रही हूँ मैं ? प्रकाश ! स्वर्णिम प्रकाश !

कल्पना——यह सुनहली घाटियोंका देश है, यहाँ इन्द्रधनुषोंका मेला लगा रहता है। यहाँ देवकुमार रहते हैं, सुनहले पंख-वाले देवकुमार। वे नीलमके पंखोंवाली अप्सराओंके आगे-पीछे, इधर-उधर मँडराते फिरते हैं। वहाँ नृत्य है, संगीत है

अम्बपाली——चलो न वहीं, देवकुमारोंको देखूँगी।

कल्पना——नहीं अम्बे, मैं तुझे फूलोंका देश दिखाऊँगी।

अम्बपाली——वायुकी लहरोंपर तिरती हुई यह कैसी सुरभि आ रही है ?

कल्पना——यह फूलोंके देशकी सुरभि है अम्बे ! देख, तू वहाँ पहुँच भी गयी !

अम्बपाली——कितना सुन्दर देश है यह ! फूलोंका देश ! राशि-राशिके फूल ! चारों ओर फूल-ही-फूल——चम्पाके, गुलाबके, पारिजातके ! धरतीपर फूलोंकी पंखुड़ियाँ, धूलके बदले पीतपराग ! चारों ओर यौवनकी रंगीन तितलियाँ उड़ रही हैं।

कल्पना——यही फूलोंका देश है अम्बे !

अम्बपाली——और यह ?

कल्पना——निर्मल नील सरोवर।

अम्बपाली——कैसा मनमोहक है यह ! कमलके फूल——सहस्र ! सहस्र ही नहीं, असंख्य। लाल, श्वेत, पीत, नील ! ये फूल मुझे स्नान करनेका इंगित कर रहे हैं। सुनती हो ? अरे, तुम कहाँ गयी? अभी तो यहीं थी, कहाँ अदृश्य हो गयी ? (**हल्की हँसी**) अच्छा ही हुआ, तुम चली गयी। मैं कंचुकी खोलकर, परिधान उतारकर

स्नान करूँगी इसमे। तुम्हारे रहनेसे मुझे लज्जा लगती। निर्मल जलमे मेरा प्रतिबिम्ब। कितना सुन्दर है यह। अच्छा, जलमे कूद पड़ूं। (**जलमें कूदनेकी आवाज**) वह नील कमल। चलूँ, ले आऊँ उसे। (**तैरनेकी आवाज**) अरे। यह क्या ? यह फूल नही, कलँगी-वाला राजकुमार है। मुझे देखकर मुस्कुरा रहा है। भागूँ, उधर चलूँ इधर भी कलगीवाला राजकुमार। इधर भी कलँगीवाला राजकुमार। इतने राजकुमार।

बहुत-से पुरुष-स्वर (बारी-बारीसे)—इधर आओ अम्बे। इधर आओ अम्बे। (**कई बार**)

अम्बपाली—मुझे मत देखो, मुझे मत देखो, मैं नग्न हूँ, नग्न हूँ मैं।

बहुत-से पुरुष-स्वर—(**हँसी**)

अम्बपाली—तुम नही मानते, नही मानते, तो मैं डूब मरूँगी। आह। साँस घुट रही। आह। (**जोरसे**) आह।

(**पृष्ठभूमि-संगीत समाप्त**)

मधूलिका—क्या है अम्बे ?

अम्बपाली—कौन ? कौन ? मधु ? कुछ नही मधु, कुछ नही। मैं स्वप्न देख रही थी।

मधूलिका—तू तो सदैव स्वप्न ही देखा करती है अम्बे। कोई भयानक स्वप्न था क्या ?

अम्बपाली—नही, मधु, भयानक स्वप्न नही था।

मधूलिका—तो, तू इस तरह चिल्ला क्यो उठी ?

अम्बपाली—यो ही।

मधूलिका—यो ही नही, तुझे कहना पड़ेगा।

अम्बपाली—मैं लज्जाके नील सरोवरमे डूबी जा रही थी।

मधूलिका—लज्जाके नील सरोवरमे ?

अम्बपाली—हाँ मधु, म नग्न थी, पूर्णत नग्न । और, हजार-हजार राजकुमार, कलगीवाले राजकुमार मुझे नग्न देख रहे थे ।

मधूलिका—अब समझी ।

अम्बपाली—क्या समझी मधु ?

मधूलिका—वसतकी प्रथम रात्रिका यह स्वप्न कुछ महत्त्व रखता है अम्ब !

अम्बपाली—क्या महत्त्व रखता है मधु ?

मधूलिका—यह साधारण स्वप्न नही हे । इसका तात्पर्य

अम्बपाली—क्या तात्पर्य है इसका ?

मधूलिका—याद है तुझे ? उस दिन ज्योतिषीने तेरे हाथकी रेखाएँ देखकर क्या कहा था ? तेरे चरणोपर हजार-हजार राजकुमारोके मुकुट लोटेंगे ।

अम्बपाली—चुप, चुप । मैं तो उसकी कल्पनासे ही सिहर उठती हूँ मधु । हजार-हजार राजकुमार । उफ । क्या वह भी कोई जीवन होगा ? मेरा तो अकेला

मधूलिका—अरुणध्वज है । क्यो, यही न कहना चाहती हो ?

अम्बपाली—हाँ मधु, यही कहना चाहती हूँ ।

मधूलिका—तो, आशकित होनेकी क्या बात हे ? स्वप्न भी कभी सत्य होते हैं ?

अम्बपाली—नही मधु, तू कह रही थी, यह स्वप्न असाधारण हे ।

मधूलिका—अच्छा, इसका विचार कल करना। आओ, अब सो जाएँ । अभी रात बहुत शेष हे !

(वाद्य-सगीतसे दृश्य समाप्त होता है)

अब ऊपरके दोनो अशोको देखनेमे ज्ञात होगा कि नाटकका रूपान्तर करते समय उसके मौलिक रूपमे पर्याप्त परिवर्त्तन किया गया है, पर इन परिवर्त्तनोके लिए रूपान्तरकारके पास अनेक कारण है । सबसे पहला परिवर्त्तन तो यह है कि दृश्यके प्रारभमे अम्बपाली जो गीत गा रही है, उसे हटा दिया

गया है, अम्बपाली और मधूलिकाकी चुहलबाजी तथा स्वप्न एव रूपके सबधमे उनकी बातचीतको रूपान्तरित अशमे कोई स्थान नही दिया गया है। ऐसा करनेके लिए पहला कारण यह है कि रेडियो-नाटकमे समयका बधन है। रगमचपर 'अम्बपाली'का अभिनय दो-ढाई घटे तक दिखाया जा सकता है, पर रेडियो-द्वारा उसे एक घटेमे ही प्रसारित करना है। 'अम्बपाली'के रेडियो-रूपान्तरको इस प्रकार रखना है कि एक ही घटेमे उसका पूरा आनद उठाया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि कथनोपकथन और घटना-चक्रके उस अशको रूपान्तरमे आने न दिया जाय, जिसका नाटकके मूल सूत्रसे निकट सबध न हो। रगमच-नाटकके प्रारभिक दृश्यमे नाटककी मूल घटना, मूल कथावस्तु अथवा मूल समस्याको धीरे-धीरे प्रस्फुटित होने का अवसर दिया जाता है, लेकिन रेडियो-नाटकमे इसके लिए अवकाश नही है। यहाँ हमे नाटककी प्रधान विषय-वस्तुपर शीघ्रतासे पहुँच आना है। रेडियो-नाटकमे ऐसे अशोके लिए कोई स्थान नही है, जो नाटककी मूल कथावस्तु या समस्यापर शीघ्रतासे पहुँचनेमे बाधक हो। इसीलिए 'अम्ब-पाली'के रूपान्तरमे पहले गीतको भी स्थान नही दिया गया है। रगमचपर गीत गानेमें कुछ समय भी लगता है, और रेडियो-नाटकमे समयका अभाव है।

'अम्बपाली'के उपर्युक्त अशमे दूसरा परिवर्तन यह है कि समूचा दृश्य बिलकुल भिन्न प्रकारसे उपस्थित किया गया है। मूल नाटकमे पहला दृश्य आम्र-कुजका है, जिसमे अम्बपाली झूलेपर झूलती है, वही मधूलिका आती है और दोनोमे बाते होती है, वही अम्बपाली मधूलिकाको अपना विचित्र सपना भी सुनाती है। रूपान्तरित अशमे दृश्य शयन-कक्षसे प्रारभ होता है, जिसमे अम्बपाली और मधूलिका सोयी हुई है, यही अम्बपाली स्वप्न देखती है। रगमचकी दृष्टिसे पहला दृश्य बडा सुन्दर था। पर्दा उठते ही लोग आम्र-कुजका रमणीय दृश्य देखते, जिसमें अम्बपाली झूलेपर झूलती हुई गाती रहती, बादमे अपनी सखी मधूलिकासे अपने स्वप्नका विवरण देती। 'अम्बपाली'के प्रथम दृश्यमे स्वप्नका वर्णन ही सबसे प्रधान वस्तु है, क्योकि इससे उसकी मानसिक अवस्थाका परिचय मिलता है। हम उसका मनो-

वैज्ञानिक विश्लेषण करे, तो ज्ञात होगा कि किसी ज्योतिषीने उसके हाथकी रेखाएँ देखकर भविष्यवाणी की है कि उसके चरणोपर हजार-हजार राजकुमारोके मुकुट लोटेगे। इस बातको वह अपने चेतन मनमे स्थान नही देती, क्योकि वह अरुणसे प्रेम करती है। हजार-हजार राजकुमारोकी कल्पनामे ही वह सिहर उठती है, फलत यह भावना उसके अवचेतन मनमे समा जाती है और वहीसे स्वप्न बनकर उसकी पलकोमे आती है। इन दोनो परस्पर विरोधी भावनाओके कारण अम्बपालीके मनमे एक द्वन्द्व है, जो 'अम्बपाली' नाटकका प्रधान विषय है। तो, स्वप्न-दृश्य 'अम्बपाली'का प्रारभिक केन्द्र-बिंदु है, जहाँसे कथा-वस्तु आगे चलती है, लेकिन मूल नाटकमे यह स्वप्न-दृश्य वर्णनके रूपमे आया है, क्योकि उसके पास रगमचका बधन है। रगमचपर स्वप्न-दृश्य दिखलानेमें कठिनाई है, पर रेडियो-द्वारा इसे सरलतासे प्रस्तुत किया जा सकता है। स्वप्न-दृश्यको वर्णन-द्वारा उपस्थित न करके, स्वतन्त्र रूपसे ही क्यो उपस्थित किया जाय, इसके लिए भी कारण है। प्रत्यक्ष दृश्यमे जो प्रभावोत्पादकता और मर्मस्पर्शिता होती है, वह वर्णनमे नही होती। इसीलिए रूपान्तरमे स्वप्नको प्रत्यक्ष दृश्यके रूपमे प्रस्तुत किया गया है।

यो, देखनेसे ज्ञात होगा कि रूपान्तर मूल नाटकसे भिन्न है, लेकिन उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषणको देखनेसे सदेह नही रह जाएगा कि विषय-वस्तुकी दृष्टिसे रूपान्तर और मूल नाटकमें कोई अतर नही है। दोनोमे अतर केवल अभिव्यक्ति और माध्यमका है। प्रभावोत्पादकताकी दृष्टिसे रगमचकी ही विषय-वस्तुको रेडियो-माध्यमके लिए परिवर्तित कर दिया गया है।

पर सब नाटकोमे एक ही प्रकारके परिवर्त्तन नही किये जा सकते। प्रत्येक नाटकके रूपान्तरकी अपनी समस्याएँ होती है, और रूपान्तरकारको सोचना पडता है कि नाटकके किन अशोमे, किस प्रकारके परिवर्त्तन किये जायँ कि वह सरलतासे रेडियो-द्वारा प्रसारित किया जा सके, और लोग उसे केवल सुनकर ही समझ सके। इसीलिए रूपान्तरका कोई एक निश्चित उपाय

नही बतलाया जा सकता। यह रूपान्तरकारकी अपनी सूझ, प्रतिभा और अनुभवपर निर्भर है कि वह कहाँ और किस प्रकारके परिवर्त्तन करता है, पर सब प्रकारके परिवर्त्तनोकी सार्थकता होनी चाहिए। उदाहरणके लिए 'अम्ब-पाली'का ही एक दूसरा दृश्य देखिए। इसके तीसरे अकके प्रथम चार दृश्यो-मे अजातशत्रुकी कथा है। उनमे दिखलाया गया है कि अजातशत्रुके हृदयमे अम्बपालीके प्रति आसक्तिकी भावना है, वह वैशालीपर आक्रमण करनेके लिए अपने मन्त्रियोमे परामर्श करता है, कूटनीतिके खेल खेलता है, वैशाली के नागरिकोमे भेदभावके बीज बोता है, और अतमे उसपर आक्रमण करके विजयी होता है। यह समूची कथा 'अम्बपाली'की आधिकारिक कथासे अलग है, इससे अम्बपालीकी चारित्रिक विशेषताओपर भी कोई प्रकाश नही पडता। (उसकी वीरता अवश्य सामने आती है, जिसका सकेत रूपा-न्तरित अशमे आगे कर दिया गया है)। साथ ही, रूपान्तरित नाटककी अवधि भी मूल नाटकसे कम होनी चाहिए। इसलिए छब्बीस पृष्ठोकी इस कथाको इस प्रकार सक्षिप्त कर दिया गया है।

(वाद्य-सगीतसे दृश्य-परिवर्त्तन)

चयनिका—देवि अम्बपाली।

अम्बपाली—क्या है चयनिके ?

चयनिका—सुना है, वैशालीपर आक्रमण होनेवाला है। मगधराज अजातशत्रुकी सेनाएँ बढती आ रही हैं।

अम्बपाली—हा चयनिके, जानती हूँ मैं। वैशाली और मगधकी शत्रुता नयी नही है। मगध वैशालीकी उन्नति नही देख सकता, वृज्जिसघका गौरव उसके अतरको जला रहा है। जानती है, अजातशत्रुने क्या कहा है ?

चयनिका—क्या कहा है भद्रे ?

अम्बपाली—अजातशत्रुने कहा है, वैशाली (**फेड आउट**)*

* 'फेड आउट'का तात्पर्य होता है—ध्वनिका धीरे-धीरे लुप्त होजाना। इसके लिए अभिनेता बोलता हुआ धीरे-धीरे माइक्रोफोनसे दूर हट जाता है।

अजातशत्रु——(**फेड इन**)* को पददलित कर दूँगा। उसके गौरवको धूलमें मिला दूँगा। वृज्जियोंका अपने राष्ट्र-बलका अभिमान हो गया है। गंगापर चलनेवाले हमारे बजरोंसे वे कर वसूलते हैं, गंगा पारकर वे हमारे गाँव पर छापा मारते हैं, उन्हें लूटते हैं। मगध अपना यह अपमान नहीं सहन कर सकता। वह वैशालीको पददलित करके रहेगा।

(**युद्ध-संगीत, युद्ध-कोलाहल**)

अजातशत्रु——मगधके वीरो, बढ़ते चलो, विजय तुम्हारी है।

(**युद्ध-संगीत, युद्ध-कोलाहल, फिर संगीत**)

अजातशत्रु——(**अट्टहास**) वृज्जियोंको अपनी राष्ट्र-शक्तिका अभिमान था! (**हँसी**) भगवान् बुद्धने कहा था, वृज्जियोंकी उन्नति होगी, उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकेगा! (**हँसी**) अजातशत्रुकी तलवारसे अपनी तलवार टकराने चले थे वे! (**हँसी**)

(**वाद्य-संगीत-द्वारा दृश्य-परिवर्त्तन**)

अम्बपाली——सखी चयनिके, देख तो, मेरा शृंगार कैसा उतरा!—— नहीं बोलती तू? क्या सोच रही है?

चयनिका——कुछ नहीं आर्ये! आपका यह शृंगार देखकर आपके वीर-वेशकी स्मृति सजग हो आती है!

अम्बपाली——वीर-वेश! हाँ चयनिके, वैशालीके लिए अम्बपाली सबकुछ कर सकती है। लेकिन, उस वीर-वेशसे कोई लाभ तो न हुआ, वैशाली पराजित होकर रही।

---

*'फेड इन'का तात्पर्य होता है——ध्वनिका धीरे-धीरे स्पष्ट हो जाना। इसके लिए अभिनेता दूरसे बोलता हुआ धीरे-धीरे माइक्रोफोनके निकट आ जाता है। इसकी पूरी चर्चा आगे 'रेडियो-रंगमंच' शीर्षक अध्यायमें की गयी है।

इस प्रकार मूल कथावस्तुमे बिना किसी व्याघातके उसके एक बहुत बडे अशका रूपान्तर कर दिया गया है। रूपान्तर करनेमे बडे-बडे अशोको तो सक्षिप्त करना ही पडता है, पर कही-कही दृश्योका स्थान-परिवर्त्तन भी करना पडता है। रगमचके नाटकोमे पात्र दर्शकोके सम्मुख रहते है, और दर्शक उनकी आकृतियोसे परिचित हो जाते हैं, भले ही उनका पूरा परिचय उन्हे न प्राप्त हो। फलत नाटककी कथावस्तु समझनेमे कोई कठिनाई नही होती। पर रेडियो-नाटक केवल ध्वनियोपर ही निर्भर है। उसमे रगमच-नाटककी उपर्युक्त सुविधा नही रहती। कुछ नाटकोका रेडियो-रूपान्तर करते समय यह कठिनाई सामने आ जाती है। उदाहरणके लिए 'स्वप्नवासवदत्ता' का प्रथम अक है। प्रथम अकके शुरूमें ही एक सकेत है—'परिव्राजक वेशधारी यौगन्धरायण और आवतिका वेशधारिणी वासवदत्ताका प्रवेश'। प्रथम अकके मध्यमे इनके स्वगत-कथनसे इनका परिचय मिलता है। वही ब्रह्मचारीके कथनसे इनके गुप्त रहस्यका पता चलता है। यदि रेडियो-रूपान्तर मूल नाटककी ही तरह प्रारभ किया जाय, तो श्रोताओके लिए वह सहज बोध-गम्य नही हो सकेगा। इसलिए रूपान्तरमे नाटक इस प्रकार प्रारभ होता है—

(प्रारभिक वाद्य-संगीतके बाद कोलाहल, आह-चीत्कार, 'आग-आग' 'भागो, भागो'की ध्वनियाँ)

यौगन्धरायण—क्या हुआ आर्य ?

पुरुष—नही जानते ? समूचा गाँव भस्म हो गया !

यौगन्धरायण—भस्म हो गया ? कौन-सा गाँव था आर्य ?

पुरुष—यही तो वत्सराजमे विख्यात लावणक ग्राम था ! महाराज उदयनका शिविर यही तो था !

यौगन्धरायण—तब ?

पुरुष—महाराज उदयन आखेट खेलने गये थे, तबतक गाँवमे आग लग गयी ! और महाराजकी प्राणोसे भी प्रिय पत्नी वासवदत्ता जल मरी।

यौगन्धरायण---जल मरी ?

पुरुष---हाँ आर्य ! लोग कहते है, उसे बचानेके लिए मत्री यौगध-रायण आगमे कूद पडे ।

यौगन्धरायण---उनका क्या हुआ ?

पुरुष---वे भी भस्म हो गये !

यौगन्धरायण---फिर ?

पुरुष---उसके बाद मुझे ज्ञात नही। अच्छा आर्य, मुझे देर हो रही है, म चला ।

यौगन्धरायण---अच्छा, जाइए । (**तनिक ठहरकर, हँसते हुए**) लोग कहते हे, महाराज उदयनका मत्री योगधरायण जल मरा, और म अभी जी रहा हूँ । महारानी वासव-दत्ता भी अभी जीवित ही है । ठीक है, जैसा मत्रियोमे निश्चित हुआ था, वैसा हो रहा हे । जब मेरे स्वामी समूचे वत्सदेशपर अधिकार कर लेगे, तब मै महारानी वासवदत्ताको लेकर उनके सम्मुख उपस्थित होऊँगा । तबतक विरह-दग्ध महाराज उदयनकी सेवा मन्त्री रुम-ण्वान करेगा ही । अच्छा, अब महारानीको मुझे किसी सुरक्षित स्थानमे पहुँचा देना चाहिए ।

घटनाओ और पात्रोके सबधमे इतना परिचय प्राप्त कर लेनेके बाद श्रोताओको नाटक समझनेमे कोई कठिनाई न होगी ।

इन परिवर्त्तनोके अतिरिक्त कुछ और भी बाते है, जिनपर ध्यान देना आवश्यक होता है । पहली बात तो हे, रेडियो-नाटककी सीमित अवधि, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका हे । बडे-बडे नाटकोकी अप्रासगिक कथाओ को काट-छाँटकर नाटककी अवधि कम करनी पडती हे । सभव हे, कुछ नाटकोकी अवधि कम न की जा सके । वैसी स्थितिमे फेलिक्स फेल्टनकी राय है कि नाटकका रूपान्तर प्रसारित ही न किया जाय । उसने कहा है--'Where the play cannot be reduced to the time

allowed without real damage it should obviously not be broadcast '

ध्यान देनेकी दूसरी बात है पात्रोकी सख्या । रगमचपर अनेक पात्र एक ही साथ उपस्थित हो सकते है, और दर्शकोको उनका परिचय प्राप्त करने और उनकी बाते समझनेमे कोई कठिनाई न होगी । लेकिन रेडियो-नाटकके श्रोताके लिए एक साथ ही अनेक पात्रोसे परिचित होना, उनके नाम याद रखना, उनकी आवाजसे ही उन्हे अच्छी तरह पहचानते रहना मुश्किल है । इसलिए रूपान्तर करते समय रूपान्तरकारके लिए आवश्यक है कि वह एक साथ ही अनेक पात्रोको न आने दे ।

साथ ही पात्रोका प्रवेश और प्रस्थान पर भी रूपान्तरकारका ध्यान जाना चाहिए । रगमचपर प्रवेश और प्रस्थानकी कोई असुविधा नही है । दर्शक पात्रोको रगमचपर आते, और वहाँसे विदा लेते देखते ही रहते है, पर रेडियो-नाटकके श्रोताओको इन बातोसे परिचित कराते रहनेके लिए लेखकको सजग रहना पडता है । बहुत अश तक यह काम प्रस्तुतकर्त्ताओ (Producers) पर निर्भर है कि कौन पात्र माइक्रोफोनसे किस तरफ बोले, कितनी दूरसे बोले अथवा किस प्रकार बोलता हुआ माइक्रोफोनसे दूर हटता जाये ।

पात्रोसे सबधित एक बात और है । रगमचके नाटकोमे हम देखते है कि कभी-कभी दो पात्र आपसमे बहुत देर तक बाते करते रहते है, और तीसरा पात्र, जिसके बोलनेकी आवश्यकता नही रहती, मौन होकर सुनता रहता है, और कुछ समयके बाद बोलता है । दर्शक उसे देखते रहते है, और उन्हे इसमे कोई खटकनेवाली बात नही दिखायी देती । पर रेडियो-नाटकके श्रोताके लिए यह बात चौका देनेवाली है । एकाएक तीसरे पात्रकी आवाज सुनकर वह समझ नही पाएगा कि वह कहाँसे आ गया । तात्पर्य यह कि रेडियो-नाटकमे किसी पात्रको बहुत देरतक मौन नही रखा जा सकता । उदाहरणके लिए ऊपर उद्धृत 'अम्बपाली' का रूपान्तरित अश देखिए । प्रारभमें मधूलिकाकी कुछ पक्तियाँ श्रोताओको इस बातकी सूचना

देनेके लिए ही दी गयी हे कि अम्बपाली जब सपना देख रही है, तब मधूलिका भी वही हे, जिससे अम्बपालीके जागनेपर मधूलिकाका उससे बाते करना असगत न लगे ।

रंगमचपर ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती हे, जब सभी पात्र पूर्णत मौन हो जायँ, पर रेडियो-नाटकमे ऐसी परिस्थिति कभी नही आ सकती । रेडियोपर पन्द्रह सेकेंडकी शाति भी बहुत अधिक होगी । अत रूपान्तर करते समय वेसी परिस्थितियोकी अभिव्यक्ति भी ध्वनियोके ही द्वारा होनी चाहिए ।

रगमच-नाटकोके दर्शकोको यह समझनेमे कभी कोई कठिनाई नही होती कि कौन पात्र किससे बोल रहा हे । उनमे पात्र बारी-बारीसे अनेक पात्रोकी ओर घूम-घूमकर उनसे बाते कर सकता है, पर रेडियो-नाटकोमे यह सुविधा नही है। अत रूपान्तर करते समय रेडियो-नाटककी इस सीमा-की ओर ध्यान देना आवश्यक हे ।

रूपान्तर करते समय अनेक स्थलोपर रूपान्तरकारको मूल नाटकमे परिवर्त्तन करने पडते हे, यह ऊपरकी बातोसे स्पष्ट हो चुका हे । कही-कही अपनी ओरसे भी कुछ अश या दृश्य जोडने पडते हे । वैसी परिस्थितिमें रूपान्तरकारको अपनी भाषा और शैली-सबधी शक्तिका परिचय देना होता है। नये जोडे गये अशोकी भाषा-शैली मूल नाटककी भाषा-शैलीसे बिलकुल मिलती-जुलती होनी चाहिए, जिससे श्रोता मूल नाटक और उसके रूपान्तर मे जोडे गये नये अशोमे कोई अतर न पा सके ।

इन बातोसे यह स्पष्टत ज्ञात हो जाता है कि रगमच-नाटकोके रेडियो-रूपान्तरका अर्थ केवल यही नही है कि किसी नाटकको काट-छाँटकर उसकी अवधि कम कर दी जाय, रगमचके सकेतोको हटा दिया जाय, कथनोपकथन में पात्र एक-दूसरेको नामसे सबोधित करे। इसका अर्थ है—एक नये माध्यम-के अनुरूप नाटकके स्वरूप-विधानमे पूर्ण परिवर्त्तन ।

कहानियोंके रेडियो-रूपान्तर

रगमच-नाटकोके रेडियो-रूपान्तरकी भाँति छोटी कहानियोके भी रेडियो-रूपान्तर प्रसारित किये जाते है। इनमे अनेक सुविधाएँ भी प्राप्त है। आजके कर्म-व्यस्त युगमे मनुष्य बडे उपन्यासो और नाटकोसे बचनेका प्रयास करता है। उसकी माँग कम-से-कम समयमे अधिक मनोरजन एव आनदकी होती है। साथ ही बहुत लोग प्रसिद्ध कथाकारोकी कृतियोसे परिचित होना चाहते है, पर पुस्तक उठाकर उन्हे पढ लेनेका धैर्य उनके पास नही होता। और, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वर्णनात्मक कहानियोकी अपेक्षा नाटकोमें अधिक प्रभावोत्पादकता और मनोरजकता होती है। इन बातोसे समझा जा सकता है कि सुप्रसिद्ध कहानी-लेखकोके रेडियो-रूपान्तर बडे लोक-प्रिय हो सकते है। रूपान्तर इसी दृष्टिसे किये भी जाते है।

कहानियोके रेडियो-रूपान्तरको साधारणत बहुत सरल समझा जाता है, पर बात ऐसी नही है। सफल रेडियो-रूपान्तर उतना ही कठिन है, जितना किसी मौलिक नाटककी रचना। मौलिक नाटककी रचनामे जिस कल्पना-शक्ति और सूझकी अपेक्षा होती है, वही रूपान्तरके लिए भी आवश्यक है। साथ ही इसमें अपने नवीन माध्यमका पर्याप्त ज्ञान और अनुभव भी अपेक्षित है।

कहानियाँ पढी जानेके लिए लिखी जाती है। उनका रूपान्तर करनेका अर्थ है, उन्हें एक नये माध्यमके उपयुक्त बनाना। इसके लिए रूपान्तरकारको सबसे पहले यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि कहानियाँ अपने मौलिक रूपमे भले ही पढ दी जायँ, पर 'नाटक' कहकर प्रसारित नही की जा सकती। साथ ही, यह भी समझ लेना आवश्यक है कि किसी कहानीके रेडियो-रूपान्तरका मतलब केवल यही नही है कि उसे कथनोपकथनके माध्यमसे कह दिया जाय, वल्कि यह भी कि उसमे नाटकीय तत्त्वोका समावेश किया

जाय, उसका नाटकीकरण कर दिया जाय। यदि ऐसा नही होता, तो उसे सफल रूपान्तर नही कहा जाएगा। इस सबधमे चार्ल्स हेटनका कहना है—'In converting the short story into radio form, the whole effect has to be heightened and made more dramatic if it is to be successful Otherwise, the B B C. might just as well engage a competent performer to read the original story' इन बातोको उदाहरण-द्वारा समझनेमे सुविधा होगी। 'प्रसाद'जीकी सुप्रसिद्ध कहानी 'इन्द्रजाल'का प्रारभिक अश इस प्रकार है—

'गाँवके बाहर, एक छोटेसे बजरमे कजरोका दल पडा था। उस परिवारमे टट्टू, भैसे और कुत्तोको मिलाकर इक्कीस प्राणी थे। उसका सरदार मैकू, लबी-चौडी हड्डियोवाला एक अधेड पुरुष था। दया, माया उसके पास फटकने नही पाती थी। उसकी घनी दाढी और मूँछोके भीतर प्रसन्नताकी हँसी भी छिपी ही रह जाती। गाँवमे भीख माँगनेके लिए जब कजरोकी स्त्रियाँ जाती, तो उनके लिए मैकूकी आज्ञा थी कि कुछ न मिलनेपर अपने बच्चोको निर्दयतासे गृहस्थके द्वारपर जो स्त्री न पटक देगी, उसको भयानक दण्ड मिलेगा।

उस निर्दय झुण्डमे गानेवाली एक लडकी थी। और एक बाँसुरी बजानेवाला युवक। ये दोनो भी गा-बजाकर जो पाते, वह मैकूके चरणोमे लाकर रख देते। फिर भी गोली और बेलाकी प्रसन्नताकी सीमा न थी। उन दोनोका नित्य सपर्क ही उनके लिए स्वर्गीय सुख था। इन घुमक्कडोके दलमे ये दोनो विभिन्न रुचिके प्राणी थे। बेला बेडिन थी। माँके मर जाने पर अपने अकर्मण्य पिताके साथ वह कजरोके हाथ लगी। अपनी माताके गाने-बजानेका सस्कार उसकी नस-नसमे भरा था। वह बचपनसे ही अपनी माताका अनुकरण करती हुई अलापती रहती थी।

शासनकी कठोरताके कारण कजरोका डाका और लडकियोके चुरानेका व्यापार बद हो चला था। फिर भी मैकू अवसरसे नही चूकता। अपने

दलकी उन्नतिमे बराबर लगा ही रहता। इसी तरह गोलीके बापके मर जानेपर---जो एक चतुर नट था---मैकूने उसकी खेलकी पिटारीके साथ गोलीपर भी अधिकार जमाया। गोली महुअर तो बजाता ही था, पर बेलाका साथ होनेपर उसने बाँसुरी बजानेमे अभ्यास किया। पहले तो उसकी नट विद्यामे बेला भी मनोयोगसे लगी, किंतु दोनोको भानुमती-वाली पिटारी ढोकर दो-चार पैसे कमाना अच्छा न लगा। दोनोको मालूम हुआ कि दर्शक उस खेलसे अधिक उसका गाना पसद करते है। दोनोका झुकाव उसी ओर हुआ। पैसा भी मिलने लगा। इन नवागन्तुक बाहरियो-की कजरोके दलमे प्रतिष्ठा बढी।

बेला साँवली थी। जैसे पावसकी मेघमालामे छिपे हुए आलोक-पिण्ड-का प्रकाश निखरनेकी अदम्य चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीरके भीतर उद्वेलित हो रहा था। गोलीके स्नेहकी मदिरासे उसकी कजरारी आखे लालीसे भरी रहती। वह चलती तो थिरकती हुई, बाते करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारो ओर बिखरी रहती। फिर भी गोलीसे अभी उसका ब्याह नही हुआ था।

गोली जब बाँसुरी बजाने लगता, तब बेलाके साहित्यहीन गीत जैसे प्रेमके माधुर्यकी व्याख्या करने लगते। गाँवके लोग उसके गीतोके लिए कजरोको शीघ्र हटानेका उद्योग नही करते। जहाँ अपने अन्य सदस्योके कारण कजरोका वह दल घृणा और भयका पात्र था, वहाँ गोली और बेलाका सगीत आकर्षणके लिए पर्याप्त था, किंतु इसीमे एक व्यक्तिका अवाञ्छनीय सहयोग भी आवश्यक था। वह था भूरे, छोटी-सी ढोल लेकर उसे भी बेलाका साथ करना पडता था।

भूरे सचमुच भेडिया था। गोली अधरोसे बाँसुरी लगाये, अर्द्ध-निमी-लित आँखोके अतरालसे, बेलाके मुखको देखता हुआ जब हृदयकी फूँकसे बाँसके टुकडको अनुप्राणित कर देता, तब विकट घृणासे ताडित होकर भूरेकी भयानक थाप ढोलपर पड जाती। क्षण-भरके लिए जैसे दोनो चौक उठते।'

प्रश्न यह है कि इस अशको नाटकीय रूप कैसे दिया जाय ? इस समूचे अशमे केवल विवरण ही है, इसमे कोई गति नही, कोई घटना नही, कोई सघर्ष नही । स्पष्ट है कि अपने मौलिक रूपमे इसे कोई पढ भले ही ले, इसका अभिनय नही किया जा सकता । अत रूपान्तर करनेके लिए हमे इसकी प्रमुख बातोको ध्यानमे रखकर बिलकुल भिन्न प्रकारसे लिखना होगा । इसका रूपान्तर इस प्रकार किया जा सकता है—

(वाद्य-सगीतसे दृश्य आरम्भ)

आदमी—क्यो भूरे, मौज है न ?

भूरे—मौज क्या खाक है !

आदमी—क्यो, तू तो हमेशा बेलाके साथ रहता है !

भूरे—साथ रहनेसे क्या हुआ ?

आदमी—बेलाके गीत तेरे ढोलपर ही तो चलते हैं ।

भूरे—लेकिन गोलीकी बाँसुरीके सामने बेला मेरा ढोल पसद करे, तब तो !

आदमी—पर तेरे ढोलके बिना वह गा भी तो नही सकती ?

भूरे—यह ठीक कहा तुमने ! नही तो बेला और गोली मुझे अपने पास फटकने देते ? बेला मुझसे घृणा करती है, गोली मुझसे दूर-दूर रहता है, लेकिन करे तो क्या ! मुझे अपने पास रखना ही पडता है !

आदमी—लेकिन बेला तुझसे जब प्रेम ही नही करती, तो साथ रहनेसे क्या होगा ?

भूरे—प्रेम करे या न करे, वह मेरी है ! मै गोलीसे उसका ब्याह कभी न होने दूँगा ।

आदमी—क्या करोगे तुम ?

भूरे—क्या करूँगा, देखना क्या करता हूँ !

(वाद्य-सगीतसे दृश्य-परिवर्त्तन)

कथाकार—गाँवके बाहर एक छोटे-से बजरमे कजरोका दल पडा

था। वही कजरोकी झोपडियोके पास ही पलासके छोटे-से जगलमे----

बेला---(**खिलखिलाकर हसना**)

गोली---अरी पगली, हँसती ही रहेगी ?

बेला---और क्या करूँ ?

गोली---भीख माँगने नही चलेगी ? समय तो हो गया।

बेला---होने दो गोली, मैने समयका कुछ लिया है थोडे ही ?
(**हल्की हँसी**)

गोली---नही बेला, सरदार मैकू आएगा, तो जान ले लेगा।

बेला---सरदार मैकू !---उसका तो नाम ही सुनकर मेरा दिल दहल जाता है।

गोली---वह राक्षस है बेला, राक्षस ! दया, माया उसके पास है ही नही।

(**कुछ दूरपर लोगोकी हलचल**)

बेला---यह कैसा शोर-गुल है गोली ?

गोली---सुनो बेला, सरदार मैकू किसीको डाँट रहा है।

(**कुछ दूरपर बच्चेके रोनेकी आवाज**)

मैकू---(**दूरसे***---**क्रोधके स्वरमें**)---जा मैना, गाँवमे भीख माँग ले आ ! बिना भीख लिये लौटेगी तो खैरियत नही। जिस दरवाजेपर भीख न मिले, उसपर अपने बच्चेको पटक देना। समझी ? जा जल्दी !

बेला---क्यो गोली, सरदार मैकूका दिल पत्थरका है क्या ?

गोली---हाँ बेला, इसीलिए तो कहता हूँ, चल जल्दी, भीख माँगने चलें ! भूरे हमे खोज रहा होगा !

---

* 'दूर से' का तात्पर्य है---माइक्रो-फोन से दूर रह कर। स्थान की दूरी व्यजित करनेके लिए ऐसा किया जाता है।

बेला—खोजने दो उसे !

गोली—मुझे देखकर मन ही मन जलता है ।

बेला—जलकर क्या करेगा ?

गोली—बेला, तू इन कजरोंके बीच रहने लायक नही। तू यहाँ चली कैसे आयी ?

बेला—कैसे चली आयी, क्या बताऊँ ! अच्छी तरह याद भी तो नही है ! लेकिन गोली, मेरी माँ मुझे बहुत प्यार करती थी। उसीसे मैंने गीत गाना सीखा था, पर उसके मरनेके बाद कोई प्यार करनेवाला न रहा ! पिता शराबी और आलसी थे, मैंकूके साथ रहने लगे ! करती क्या, मै भी यही रहने लगी ! और, तुम गोली ? तुम यहाँ कैसे आये ?

गोली—मेरा भी कोई नही था बेला ! मेरे पिता बडे अच्छे नट थे। भीख माँगनेके लिए जो खेल रोज करता हूँ, सब मैंने उन्हीसे सीखे थे। लेकिन पिताके मरनेके बाद मै बेसहारा हो गया ! मैंकूने मुझे पकडकर अपने पास रख लिया। मैंने भी समझा, अच्छा ही हुआ ! और अब तो मुझे कुछ नही चाहिए, तुम मेरे साथ हो गयी हो।

बेला—हाँ गोली, मुझे भी यही लगता है। तुम्हारे साथ रहकर कोई कमी नही खलती ! मेरी खुशी तो तुम्ही हो !

गोली—दुत् पगली !

बेला—(हँसी)।

गोली—अच्छा, चल अब, बहुत देर हो गयी है !

(वाद्य संगीतसे दृश्य-परिवर्त्तन)

इस प्रकार कहानीके प्रारभिक अशकी सभी प्रमुख बाते रूपान्तरमे चली आती है, साथ ही भूरे और गोलीके बीच द्वन्द्वकी भावना (जो कहानीमे है) उपस्थित कर देनेसे नाटकीयता भी आ जाती है।

'इन्द्रजाल'के ऊपर दिये गये उद्धरणमे तो पात्रोका वार्तालाप बिलकुल नही है, पर कुछ कहानियाँ ऐसी होती है, जिनमे कहानीकार कहानी कहते-कहते आवश्यक समझनेपर पात्रोके कथनोपकथन भी लिख देता है। वैसी कहानियोके भी रूपान्तरमे केवल इतनेसे काम नही चल जाएगा कि कोई नेरेटर कहानी पढता जाये, और कथनोपकथनवाले प्रसगोका अभिनय कर दिया जाय। रूपान्तरकारको उनका भी नाटकीकरण करना चाहिए। चार्ल्स हैटनका विचार है* कि जिस कहानीका रूपान्तर करना हो, उसके कथानकको लेकर फिरसे नयी रचना तैयार करनी चाहिए। इसमे मौलिक कहानीके वे ही अश रखे जा सकते है, जो उचित और अनिवार्य समझे जायँ। हैटनका कथन बहुत अशोतक सत्य है, पर यह निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता कि किसी रूपान्तरमे कहानी-लेखक और रूपान्तरकारकी मौलिक रचनाएँ किस अनुपातमे रहेगी। कहानी-कहानीके अनुसार यह अनुपात बदलता रहेगा।

बहुत-सी कहानियोमे ऐसे प्रसग मिलते है, जिनमे किसी एक ही पात्रकी मानसिक स्थिति या उलझनका चित्र उपस्थित किया जाता है। वैसी परिस्थितियोमें रूपान्तरकारके सम्मुख बडी कठिन समस्या आती है, क्योकि रूपान्तरमे कथनोपकथन चाहिए, लेकिन जहाँ एक ही पात्र हो, वहाँ कथनोपकथन सभव नही दीखता। उदाहरणके लिए, स्वर्गीय होमवतीजीकी कहानी 'गोटेकी टोपी 'का एक प्रसग इस प्रकार है—

---

* 'To my mind, the ideal method is to use the author's plot and rewrite in this manner, using any of the author's dialogue sequences which are particularly pertinent I maintain that the resultant script should contain roughly one part of the adapter's original work to two parts of the short story writer's

Charles Hatton (Radio Plays)

'जब रातको नवल घरमें आया तो उसका मन बहुत ही अशांत और दुखी-सा था। मित्रोंके विशेष आग्रह करनेपर आज वह सिनेमा देखने चला ही गया। खेल था—"देवदास"। पार्वतीका प्रेम, उसकी मूक भाषा तथा चुभते हुए भाव और पत्तोके विवश जीवनका प्रभाव नवलके हृदयमें रेखाएँ-सी खींच गया। देवदासकी दुर्दशाको देखकर तो उसकी आँखें रोते-रोते लाल ही हो गयी थी। मित्रोंने न जाने कितना मजाक उडाया, फिर भी वह अपनेको रोक न सका। गिरता-पडता घर आकर वह अपने कमरेमें पडी हुई आराम-कुर्सीपर लेटकर न जाने क्या-क्या सोचता रहा। अचानक कैंचीके गिरनेकी-सी आवाजसे वह चौक उठा। देखा, मजरी बहुत-से कपडोका ढेर लगाये, ठीक उसके कपडोकी आलमारीके सामने बैठी हुई कुछ सी रही है। नवल एकदम कुर्सीसे उठकर खडा हो गया, कौतूहलका कुछ पारावार न था। "इतनी रातको मेरे कपडे ठीक कर रही है ? अकेली मेरे कमरेमे ! अम्माँ क्या कहती होगी ? चाची ही क्या कहेगी ? मजरीको मेरी इतनी चिंता क्यो है ? वास्तवमे मेरी वह कौन है ?" इत्यादि बातोंने नवलके मस्तिष्कमे हलचल-सी मचा दी। जो कुछ अभी वह देखकर आ रहा था, जो कुछ अब देख रहा था, हृदयको उद्वेलित करनेके लिए यह सब कुछ क्या कम था ? वह धीरे-धीरे बाहर चला आया। बरामदेमें आकर, बडे साहससे माँको आवाज दी, चाचीको पुकारा—"मुझे दूध दे जाओ।" आज उसकी हिम्मत मजरीसे दूध माँगनेकी न हुई। माँने कहा—"आज मेरे पैरोमे बडा दर्द है।" चाचीने उत्तर दिया—"आयी भैया ! देख तो, मजरी इसी आसरेमें कही बैठी होगी, मुन्नूको अकेला कैसे छोड आऊँ ?" नवलकी आवाज सुनकर मजरीका ध्यान टूट गया। जल्दी-जल्दी कपडोको यूँ ही सरकाकर वह बाहर निकल आयी। नवल ठगा हुआ-सा यह सब देख रहा था। पर मजरीके हृदयमे न कोई भाव ही दीख पडता था और न नेत्रोमें कोई कौतूहल ही नाच रहा था। जल्दीसे चौकेमें गयी और दूधका गिलास भर लायी। बुआने उसके हाथसे गिलास लेकर कहा—"जा, लल्ला अकेला है, मैं दूध दे आऊँ।"

रातको नवल बहुत देरतक जागता रहा, नींद आती ही न थी। एक-के बाद एक-एक करके उसके मस्तिष्कमें विचार आने-जाने लगे। नवलको उस दिनकी बात भी याद हो आयी, जब वह दालानमें खड़ा अपनी कमीजमें बटन टाँक रहा था। मंजरी देखती हुई उसके सामनेसे निकल गयी, परन्तु यह नहीं कहा कि तुम्हें क्या बटन टाँकना आयेगा, या कॉलिजको देर हो जाएगी, लाओ मैं ही लगा दूँ। नवलने उस दिन मन-ही-मन कहा था —"कितनी अभिमानिनी लड़की है।" पर आज उसके हृदयसे वह भाव कितनी जल्दी लुप्त होकर केवल थोड़ा-सा पश्चात्ताप छोड़ गया। यह स्वयं नवल भी ठीक-ठीक न समझ सका।'

इस अंशमें नवलके मनकी उद्विग्नता एवं भाव चित्रित हैं। बीचमें एक घटना दूध-वाली आयी है, पर मनोविश्लेषणकी दृष्टिसे उसका कोई महत्त्व नहीं है। नवल अकेला है, तब यह प्रश्न है कि उसके मनके भावोंको कैसे चित्रित किया जाय। अगर नवलका कोई घनिष्ठ मित्र रहता, तो उससे इस विषयपर बातें करायी जा सकती थी, पर वैसा कोई पात्र कहानीमें नहीं है। अतः इसके रूपान्तरमें नवलके मनको ही एक पात्रके रूपमें खड़ा कर दिया गया है। रूपान्तर इस प्रकार है —

मन—इतनी रात हो गयी, क्या तुम आज सोओगे नहीं ?

नवल—मैं नहीं सोऊँगा, इसमें तुम्हारा क्या ?

मन—है क्यों नहीं ? तुमसे कहना मेरा कर्त्तव्य है।

नवल—वाह रे कर्त्तव्य करनेवाले ! आखिर तुम हो कौन ?

मन—मुझे नहीं पहचानते ?

नवल—पहचानता, तो पूछता क्यों ? कमरेमें तुम्हें कहीं देख नहीं रहा हूँ !

मन—आश्चर्य है, तुम मुझे नहीं देखते ! मैं तुम्हारे साथ हूँ, चौबीस घंटे तुम्हारे साथ रहता हूँ, तुम्हारे भीतर रहता हूँ, तुम्हारा मन हूँ मैं।

नवल—मेरे मन हो तुम ! अच्छा किया, मेरी समस्या सुलझाने चले आये !

मन—समस्या सुलझाने नही, मै तुमसे कहने आया हूँ कि रात बहुत हो रही है, अब तुम सो जाओ !

नवल—रात बहुत हो गयी ?

मन—तुम्हे यह भी पता नही ? एक तो यो ही देरसे लौटे हो ! 'देवदास' फिल्म देखने गये थे न ?

नवल—'देवदास'की अच्छी याद दिलायी । उसीकी बात तो मै कबसे सोच रहा हूँ ।

मन—अब सोचनेको क्या है ? कैसे विचित्र आदमी हो ? भला फिल्म देखकर रोया जाता है ?

नवल—यही तो मेरे साथियोने कहा था !

मन—हाँ-हाँ, वे तुमपर हँस रहे थे ।

नवल—मै जानता हूँ, वे मुझपर हँस रहे थे, लेकिन मेरी आँखे भर-भर आती है, तो मै क्या करूँ ?

मन—कितने कमजोर हो तुम !

नवल—तुम्हें जो इच्छा हो, कह लो, पर देवदासकी दुर्दशा देखकर तो मैं अपनेको रोक नही पाता। अभी भी उसकी स्मृति से अतर मचल उठता है। और, उससे भी करुण कथा तो पार्वतीकी थी ! बेचारी तडपती रही, लेकिन उसने कुछ कहा नही। नारीका जीवन कितना विवश होता है !

मन—आज तुम बहुत अशात हो नवल ! सबेरेसे ही तुम्हे अशात देख रहा हूँ। आज सबेरेसे तुमने कुछ खाया भी नही !

नवल—खाता कैसे ? यह छुआछूत !

मन—यह छुआछूतकी बात नही नवल ! तुम मजरीकी ओर खिचते जा रहे हो !

नवल—यह क्या कह रहे हो तुम ?

मन---मैं सत्य कह रहा हूँ ।

(पत्थरपर कैंची गिरनेकी आवाज)

नवल---कौन ?

मंजरी---**(सकोचमें)** जी, मैं हूँ । ये कपडे फट गये थे, इन्हे ठीक कर रही थी।

नवल---इतनी रातको ?

मंजरी---माफ कीजिए, आपकी नीद टूट गयी।

नवल---मैं अभी सोया नही था।

मंजरी---अच्छा, अब सोइए, मैं जा रही हूँ ।

(किवाड खुलने-बद होनेकी आवाज)

मन---देखा तुमने ?

नवल---हाँ मेरे मन, देखा । वह मेरे कपडे ठीक कर रही थी। इतनी रातको। अकेली मेरे कमरेमें। अम्माँ क्या कहती होगी? चाची ही क्या कहेगी ? मंजरीको मेरी इतनी चिन्ता क्यो है ? कौन है वह ? वास्तवमें मेरी वह कौन है ? कौन है मंजरी मेरी ?

मन---अशात न ो नवल ।

नवल---अशात न होऊँ ? क्या करूँ मैं ?

मन---याद है उस दिनकी बात ? तुम दालानमें खडे अपनी कमीजमें बटन टाँक रहे थे, मंजरी सामनेसे निकल गयी, लेकिन उसने यह न कहा कि तुम्हे कालिजकी देर हो जाएगी, लाओ, मैं ही लगा दू ।

नवल---और, उस समय मैंने सोचा था, कितनी अभिमानिनी लडकी है । लेकिन आज क्या देख रहा हूँ मैं ?

मन---देखते जाओ, अधिक न सोचो। क्या तुम्हें पता है कि तुम्हारी अनुपस्थितिमें मंजरी किस तरह तुम्हारा कमरा साफ कर जाया करती है ?

नवल——हाँ, पता है। इसीलिए तो सोचता हूँ, कौन है मजरी मेरी ? मुझसे उसका क्या सबध है ?

मन——कुछ नही! वह विजना है। तुम सयमसे रहो। अधिक न सोचो। रात बहुत बीत गयी है। अब सो जाओ। विश्राम करो।

(वाद्य सगीतसे दृश्य-परिवर्तन)

इस प्रकार रूपान्तरकार मौलिक कहानीके रूपान्तरमे आनेवाली विभिन्न समस्याओको विभिन्न प्रकारसे सुलझा सकता है। इसके लिए कोई एक निश्चित नियम नही। रूपान्तरकारको केवल देखना यही है कि रूपान्तर अधिक-से-अधिक नाटकीय और प्रभावोत्पादक बन सके।

'गोटेकी टोपी'से उद्धृत अशका, जिसमे एक ही पात्र हमारे सामने उपस्थित रहता है, रेडियो-रूपान्तर करते समय स्वगत-कथनका व्यवहार किया जा सकता था, पर यहाँ स्वगत-कथन कुछ बडा होता और उसमे अधिक नाटकीयता भी नही आती, लेकिन ऐसे ही दूसरे प्रसगोमे आवश्यकता पडनेपर स्वगत-कथनका उपयोग बडी सरलतासे किया जा सकता है। रगमच-नाटकोमें स्वगत-कथन अस्वाभाविक-जैसा लगता है, पर रेडियोपर यह अस्वाभाविक नही लगता। छोटे-छोटे स्वगत-कथनोसे कोई हानि नही होती, बल्कि उनसे पात्रोंकी चारित्रिक विशेषताओ, उनकी मानसिक स्थितियोपर बडे अच्छे ढगसे प्रकाश पडता है।

यदि कोई पात्र अकेला है, तो उसके जीवनकी घटनाओ एव विशेषताओका परिचय देनेके लिए किसी नये पात्रकी सृष्टि भी की जा सकती है, जैसे 'इद्रजाल'के रूपान्तरके प्रारभिक अशमे भूरेके साथ एक आदमी रख दिया गया है। वह 'आदमी' हमारे लिए महत्त्वपूर्ण नही है, महत्त्वपूर्ण है भूरे, पर 'आदमी'के साथ उसकी जो बाते होती है, उन्हीसे हम अपने प्रधान पात्रका परिचय प्राप्त करते है।

पात्रोका परिचय देने अथवा अपेक्षित वातावरण-निर्माणके लिए नैरेटरसे भी काम लिया जा सकता है, पर नैरेटरका उपयोग वही होना चाहिए,

जहाँ वह अनिवार्य हो। यह पहले कहा जा चुका है कि नैरेटर बहुत अधिक न बोले और किसी दृश्यके प्रारंभ या अंतमें ही आये। अगर वह दृश्योंके बीच-बीचमें टपक पड़ता है अथवा लम्बे-लम्बे उद्धरण बोलता है, तो इससे नाटककी गतिमें बाधा पड़ती है। पर नैरेटरकी पंक्तियाँ कभी-कभी बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कर देती हैं। उदाहरणके लिए 'इंद्रजाल'की दो पंक्तियाँ 'गाँवके बाहर, एक छोटे-से बंजरमें कंजरोंका दल पड़ा था। वहीं, कंजरोंकी झोंपड़ियोंके पास ही, पलासके छोटे-से जंगलमें' शीघ्र ही कहानीके लिए वातावरण निर्मित कर देती है। यह कार्य केवल कथनोपकथनसे सरलतापूर्वक नहीं हो पाता।

बहुत-सी कहानियोंमें, घटनाएँ बड़ी शीघ्रतासे बदलती हैं और दृश्योंमें परिवर्तन होते जाते हैं। इनका रूपान्तर करते समय छोटे-छोटे बहुत-से दृश्य निर्मित करनेमें सुविधा मालूम होती है। यह सत्य है कि रेडियो-नाटकोंमें छोटे-छोटे दृश्य बनानेकी सुविधा है, पर क्षण-क्षण परिवर्त्तन होने-वाले बहुत अधिक दृश्योंका व्यवहार उचित नहीं। प्रत्येक दृश्यका इतना बड़ा होना आवश्यक है कि वह एक निश्चित वातावरण तैयार कर सके और पात्रोंकी चारित्रिक विशेषताओंको समझनेमें सहायक हो। तात्पर्य यह कि प्रत्येक दृश्यसे परिस्थितियों और चरित्रोंका विकास स्पष्टतः परिलक्षित होना चाहिए। भॉल गिलगुडके शब्दोंमें, "The freedom given by the microphone from the static conventions of the theatre does not free the writer from the necessity of establishing both situations and characters firmly before his audience and allowing both of them time to develop"

इसका यह तात्पर्य कभी नहीं समझना चाहिए कि छोटे दृश्य कभी लिखे ही न जायँ। अपेक्षित प्रभावकी सृष्टिके लिए कभी-कभी छोटे-छोटे दृश्य बिलकुल अनिवार्य हो उठते हैं। उदाहरणके लिए, 'गोटेकी टोपी'का ही एक अंश देखिए—

'इतने थोडे ही समयमे, इस घरके लिए वह ऐसी हो गयी मानो सदासे ही यहाँसे उसका कोई घनिष्ठ नाता है। यहा तक कि दो-चार बार मना करनेके उपरात बडी बुआ अब मजरीसे ही तेलकी मालिश कराना अधिक पसद करती हैं। बदन तो आजतक उनका वैसा किसीने दबाया ही नही, जैसा मजरीको दबाना आता है। इतना ही नही, धोबीकी धुलाई तथा ग्वालेके दूधका हिसाब भी उसे ही जोडना पडता है। शामको बिस्तर तक बिछवाना उसीके जिम्मे आ पडा है। यद्यपि मजरीको वैसा तो अधिकार किसीने दे नही रक्खा है, फिर भी महरीसे लेकर घरकी मेहतरानी तकका दुखडा उसे सुनना पड ही जाता है। नवलके पिताको न तो और किसी का बनाया अब खाना ही पसद आता है, और न भिखारीकी पीसी हुई ठण्डाईमे ही अब मजा आता है।'

रूपान्तरमे इस प्रसगको इस प्रकार रक्खा गया है—

हरप्यारी—(तनिक दूरसे) मजरी!

मजरी—आयी बडी बुआ!

हरप्यारी—नवलके बाबूजी शबतके लिए बैठे हुए हैं।

मजरी—अभी बनाये देती हू।

हरप्यारी—जा, देर न कर। वे दूसरेके हाथकी ठण्डाई पीते नही, नही तो म कभी बनवा लेती!

मजरी—मै जा रही हू, देर न होगी!

(सक्षिप्त सगीत)

हरप्यारी—मजरी!

मजरी—(निकट आती हुई) क्या है बडी बुआ?

हरप्यारी—धोबी कपडे ले आया है। जा, कपडे मिला ले। गदे कपडे भी आज ही दे देना। देखना, कोई छूटने न पाये। मेरी भीगी साडी वहा रखी हुई है।

मंजरी—अच्छा।

(संक्षिप्त संगीत)

हरप्यारी—मेरे पैर कबसे दर्द कर रहे हैं। तेरा पता ही नहीं है।

मंजरी—तीन-चार बर्तन और मलनेको रह गये हैं।

हरप्यारी—उनके लिए क्या रातभर जगी रहूंगी?

मंजरी—पहले मैं पैर ही दबा देती हूँ। अभी तेल लेकर आयी।

(संगीत)

शीघ्रतासे परिवर्तित होनेवाले इन छोटे-छोटे दृश्योंके द्वारा मंजरीकी कार्य-व्यस्तता दिखलानेका प्रयत्न किया गया है। साथ ही इनसे मंजरीकी सरलता एवं आज्ञाकारिता तथा हरप्यारीके कठोर व्यवहारकी भी झलक मिल जाती है। आवश्यकता पड़नेपर इस तरहके छोटे-छोटे दृश्योंसे काम लिया जा सकता है।

रूपान्तरमें कथनोपकथनपर भी पर्याप्त ध्यान आवश्यक है। कहानीकार अपने पात्रों, परिस्थितियोंके बारेमें स्वयं भी कहता है, पात्रोंके वार्त्तालापोंके माध्यमसे भी कहता है। उसका कार्य सरल है। लेकिन रूपान्तरकारके पास केवल एक ही साधन है—वार्त्तालाप। वार्त्तालापोंके द्वारा ही उसे सब कुछ कहना पड़ता है। पात्रोंका चरित्रांकन भी इसके ही द्वारा करना होता है। अतः रूपान्तरकारके लिए आवश्यक है कि वह मूल कहानीमें चित्रित पात्रोंके चरित्रसे भली-भाँति अवगत हो ले, तब उनके अनुरूप ही कथनोपकथन लिखे। वार्त्तालापोंके द्वारा पात्रोंका चारित्रिक विकास स्पष्ट परिलक्षित होना चाहिए।

दूसरी बात यह कि मूल कहानीमें दिये गये कथनोपकथन अपने मूल रूपमें ही रूपान्तरमें नहीं रखे जा सकते। कहानी पढ़नेके लिए लिखी जाती है, उसके वार्त्तालाप भी पढ़नेके ही लिए होते हैं, अभिनयके लिए नहीं। सब वार्त्तालापोंमें, जैसा कि हम देख चुके हैं, अभिनेयताका गुण नहीं होता। उनमें आवश्यक परिवर्तनकर ऐसा बना लेना कि अभिनेता उन्हें बिना कठिनाईके बोल सकें, रूपान्तरकारका ही कर्त्तव्य है।

रेडियो-फैंटेसी (अति कल्पना)

रेडियो-फैंटेसी भी रेडियो-नाटकका एक प्रकार है। 'फैंटेसी'का अर्थ है--'कल्पना', और रेडियो-फैंटेसीमे काल्पनिक चित्रणकी प्रधानता रहती है। काल्पनिकता तो सभी नाटकोमे होती है, पर रेडियो-फैंटेसीके प्रसगमे 'काल्पनिक चित्रण' एक विशेष अर्थमे प्रयुक्त किया जा रहा है। यथार्थ जगत्मे जिन घटनाओका होना सभव नही है, उन्हे रेडियो-फैंटेसीमे घटित होते चित्रित किया जाता है, और उनके माध्यमसे किसी विचार या मार्मिक अनुभूतिकी अभिव्यक्ति की जाती है। उदाहरणोके द्वारा यह बात स्पष्ट की जा सकती है।

आज हम देखते है कि विज्ञानकी सहायतासे मनुष्य प्रकृतिपर विजय प्राप्त कर रहा है, पर साथ ही वह विध्वसकारी अस्त्र-शस्त्रोका आविष्कार भी कर रहा है। हमे लगता है कि मनुष्यकी प्रकृति-विजय निरर्थक है। इससे तो अच्छा था वह प्राचीन युग, जब युद्धोमे भी नैतिकताकी रक्षा होती थी। आज जब युद्ध होता है, तब नगर-ग्राम, नागरिक-सैनिक, स्त्री-पुरुप, बालक-वृद्ध, सबपर बम बरसाये जाते है। आजकी नैतिकता प्राचीन युगकी नैतिकतासे कितनी भिन्न हो गयी है। इसकी अभिव्यक्तिके लिए हम सोच सकते है कि अगर प्राचीन युगका कोई मनुष्य आजके ससारको देखता, तो इसके सबधमे क्या-क्या कहता! इसके लिए मैने 'अभिशप्त'मे यह कल्पना की है कि प्रकृति-विजयके आकाक्षी आजके दो व्यक्ति हिमालयपर चढ रहे है, और उन्हे अश्वत्थामासे भेंट हो जाती है। ऐसी कल्पनाके लिए आधार भी है। महाभारतमे कहा गया है कि अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रका व्यवहार किया था, पर उसे लौटा लेनेकी क्षमता उसमे नही थी। इसलिए उसे शाप मिला था कि वह तीन हजार वर्षों तक मानव-समाजसे दूर निर्जन प्रदेशोमे भटकता फिरेगा। अत यह कल्पना की जा सकती है

है कि तीन हजार वर्ष बीत गये, अश्वत्थामा शाप-मुक्त हो गया और मनुष्यो-से उसकी भेट हो सकती है। 'अभिशप्त' रेडियो-फैंटेसी इसी कल्पनापर आधारित है। यह सही है कि यह घटना यथार्थ जगत्मे संभव नही है, पर उसके माध्यमसे जो बाते कही गयी है, वे सत्य है।

एक दूसरी रेडियो-फैंटेसीका उदाहरण लीजिए—'वे अभी भी क्वाँरी है।' कवीन्द्र रवीन्द्रने अपने एक निबंधमे काव्यकी अनेक उपेक्षिताओकी ओर संकेत किया है। उनमे शकुंतलाकी सखियाँ प्रियंवदा और अनुसूया भी है। कवि कालिदासने उनकी भावनाओके अंकनकी ओर ध्यान नही दिया। हमारे मनमे एक जिज्ञासा होती है कि वे क्या सोचती होगी, उनके हृदयमें कैसी भावनाएँ उठती होगी। 'वे अभी भी क्वाँरी है'का पात्र कला-कार माधव प्रियंवदा और अनुसूयाके विषयमे सोचता-सोचता अपनी सुध-बुध खो बैठता है, कालकी लम्बी दूरी पारकर महर्षि कण्व के आश्रम मे जा पहुँचता है और उदास एवं भग्न-हृदया सखियोसे बाते करता है।

इस तरह रेडियो-फैंटेसीमें अतीतके पात्रोसे भेंट की जा सकती है। इसके अतिरिक्त दूसरी-दूसरी कल्पनाओके आधारपर भी रेडियो-फैंटेसी लिखी जा सकती है। उदाहरणके लिए हम कल्पना कर सकते है कि कोई व्यक्ति जीवनकी उलझनो से ऊब गया है और इनसे बचनेके प्रयत्नमे पक्षीका रूप धारण कर लेता है। किसी मृत व्यक्तिको जीवित व्यक्तिकी तरह बोलते हुए चित्रित किया जा सकता है, समाधिके नीचे दबी हुई किसी सैनिककी आत्मा हमसे बाते कर सकती है। इसी प्रकार अन्य कल्पनाओके आधारपर रेडियो-फैंटेसीकी रचना की जा सकती है।

रेडियोपर फैंटेसी बिलकुल स्वाभाविक लगती है। रंगमंचपर किसी स्वप्निल या कल्पनामय वातावरणकी सृष्टि कठिन होगी, पर इसमे संगीतके द्वारा ऐसे वातावरणका निर्माण सरलतासे किया जा सकता है। चूँकि इसमे किसी भी दृश्यको देखनेकी आवश्यकता नही होती, केवल श्रव्य साधनोके द्वारा हमारे मानसिक जगत्मे उचित वातावरणकी सृष्टि कर दी जाती है। साथ ही रेडियोपर साधारण एवं अलौकिक पात्र बड़े स्वाभाविक

ढगसे उपस्थित किये जा सकते हैं। यन्त्रोंके द्वारा पात्रोंका स्वर भी बदला जा सकता है, जिससे पात्रोंकी असाधारणताका ज्ञान सरलतासे हो सकता है। एक उदाहरणसे बात साफ हो जाएगी। 'अभिशप्त'में अश्वत्थामा एक असाधारण व्यक्ति है, उसकी आकृति, अवस्था, स्वर आदि आजके साधारण मनुष्यसे भिन्न हैं। रगमचपर ऐसे व्यक्तिको उपस्थित करना कुछ मुश्किल है, पर रेडियोपर यह बडी आसानीसे किया जा सकता है।

और सब बातोंमें रेडियो-फैंटेसी रेडियो-नाटककी ही तरह होती है। रेडियो-नाटककी टेकनीकके विषयमें जो बातें पहले कही गयी हैं, वे सभी रेडियो-फैंटेसीपर भी लागू होंगी। दोनोंमें अंतर केवल काल्पनिकता और अलौकिक अथवा मानवेतर पात्रोंको उपस्थित करनेमें है। यह काम सगीत और ध्वनि-प्रभावोंके द्वारा किया जाता है।

रेडियो-फैंटेसीकी सभावनाएँ बहुत अधिक हैं, पर अभी हमारे यहाँ उनका बहुत कम उपयोग किया गया है। हिंदीमें इस प्रकारकी रचनाएँ बहुत कम लिखी गयी हैं। इस क्षेत्रमें काम करके अनेक प्रकारकी नयी उद्भावनाएँ की जा सकती हैं।

मोनोलॉग (स्वगत-नाट्य)

'मोनोलॉग' एक अग्रेजी शब्द है, जिसका अर्थ है—वह नाटक या नाटक-का अश, जिसमे केवल एक ही व्यक्ति बोलता है। हिंदीमे 'मोनोलॉग' शब्दका भी व्यवहार हो रहा है। इसे 'स्वगत-नाट्य' भी कहते है, 'एकपात्री-नाटक' भी। रेडियो-मोनोलॉग भी रेडियो-नाटकका एक प्रकार है। इसमे कोई कथनोपकथन नही होता। प्रारभसे अततक केवल एक ही व्यक्ति अपनी कहानी कहता है, तथा अपनी भावनाओको अभिव्यक्त करता है। मोनोलॉगमे कथनोपकथनका नितात अभाव देखकर यह कहा जा सकता है कि क्या यह भी कोई नाटक है? 'नाटक'की परिभाषा देते हुए एक अग्रेज लेखकने तो स्पष्ट शब्दोमे कहा है कि 'नाटक' केवल उन्ही स्थितियो अथवा रचनाओके लिए व्यवहृत किया जा सकता है, जिनमे द्वद्व निहित हो। इसके लिए कम-से-कम दो पात्रोका सहयोग अपेक्षित है। इसीलिए वर्णन और स्वगत-कथन नाटककी सीमाके परे है।[1] पर मोनो-लॉगमे भी अन्तर्द्वद्वका अकन किया जाता है। फलत इसे हम 'नाटक'के अतर्गत गिन सकते है। जब इसे 'नाटक' कहा जाता है, तब तात्पर्य केवल यही होता है कि मोनोलॉगमे नाटकका अपेक्षित द्वद्व है, वह पढनेके लिए नही, अभिनयके लिए लिखा जाता है, और कोई कुशल अभिनेता उसे नाटकीय ढगसे पढकर हमे प्रभावित कर सकता है।

---

[1] Drama—A term applicable to any situation in which there is conflict and, for theatrical purposes, resolution of that character This implies the cooperation of at least two actors, and rules out narrative and monologue

—The Oxford Companion of the Theatre
(Edited by Phyllis Hartnoll)

मोनोलॉगमे सामान्यत किसी ऐसे पात्रको उपस्थित किया जाता है, जिसका जीवन कुछ विरोधी भावनाओके ताने-बानेसे बुना हुआ होता है। दूसरे शब्दोमे कहे, तो उलझनपूर्ण व्यक्तित्ववाले पात्रोके जीवनकी किसी मार्मिक कथाको मोनोलॉगमे अंकित किया जाता है। उदाहरणके लिए श्री विष्णु प्रभाकरके मोनोलॉग 'सडक'की नायिकाको देख सकते है। जिसे वह अपना बनाना चाहती है, वह अपना नही बन सका, उसके पतिका मित्र बन जाता है। नायिकाका विवाह हो चुका है, वह चाहती है कि उस युवकको वह भूल जाए, जो उसका अपना नही हो सका, लेकिन ऐसा हो नही पाता, उस युवककी स्मृतियाँ उसके मनमे बार-बार उमडकर चली आती है। तब उसे लगता है, जैसे वह अपने पतिके प्रति विश्वासघात कर रही है। स्वय उसके शब्दोमे—

'जिसे अपना बनाना चाहती थी, उसे न बना सकी और जिसने मुझे अपना बनाया, उसके प्रति भी विश्वासघात करती हूँ, विश्वासघात। हाँ, विश्वासघात । नही, नही । नही कैसे ? उसकी याद करना, खिडकीपर आकर रोज सडकको देखना यह अपने पतिके साथ विश्वासघात नही, तो और क्या है ? नही, नही, मै उनसे प्रेम करती हूँ। मै उनसे विश्वासघात नही कर सकती।'

उसके मनकी उलझन स्पष्ट है। उसके हृदयकी दो विरोधी भावनाएँ आपसमे टकरा रही है। नाटकोमे विभिन्न पात्र परस्पर वार्तालाप करते है, मोनोलॉगमे एक ही पात्रकी विभिन्न भावनाएँ आपसमे कथनोपकथन करती है। 'मोनोलागको नाटक कहा जाना इस दृष्टिसे बिलकुल सार्थक है।

यो तो रेडियो-नाटकके सभी प्रकारोमे इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वे श्रोताओकी जिज्ञासा एव कौतूहलको अततक जगाये रखे, पर यह शक्ति मोनोलागमें विशेष रूपसे अपेक्षित है। नाटकोमे अनेक पात्र बोलते है, इसलिए उनमे एकरसता आनेका उतना भय नही रहता, जितना मोनोलॉगमे। मोनोलॉगको एकरसतासे बचानेके लिए कई बातोपर ध्यान देना पडता है।

पहली बात तो यह है कि कहानी इस तरह कही जाय कि श्रोताओंकी उत्सुकता सदा बनी रहे। कथा का विकास क्रमिक रूपसे हो, साथ ही उसकी जो मुख्य बात हो, उसे अततक रहस्यकी तरह छिपाया जाय। कथामे मुख्य रहस्यका उद्घाटन अतमे हो, तभी श्रोता उसे जाननेके लिए उत्सुक रहेगे।

एकरसतासे बचनेका दूसरा उपाय यह है कि पात्रको जो कुछ बोलना हो, वह इस प्रकार लिखा जाय कि उसके बोलनेकी गति बदलती रहे। अगर एक ही लहजेमें, एक ही गतिसे कोई आधे घटेतक बोलता रहे, तो वह श्रोताओके मनको उबानेवाला सिद्ध होगा। इसलिए मोनोलागके विभिन्न अश भावनाओके अनुरूप स्थान-स्थानपर धीमी और तेज गतिसे पढने लायक होने चाहिए। साथ ही उनका ऐसा रहना आवश्यक है कि अभिनेता स्थान-स्थानपर हास, उच्छ्वास, क्रोध आदिके भावोको सरलता से व्यजित कर सके।

इस सबधमे एक बात और ध्यान देनेकी है कि मोनोलॉगकी उल्लिखित घटनाओके अनुरूप यथेष्ट एव उचित ध्वनि-प्रभाव भी दिये जायं। यदि ट्रेनसे सबधित किसी घटनाका उल्लेख किया जा रहा हो, तो साथमे ट्रेनका ध्वनि-प्रभाव भी होना चाहिए। इससे घटनाएँ सजीव हो उठेगी और मोनो-लॉग काफी प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा।

ध्वनि-प्रभावोके अतिरिक्त मोनोलागको प्रभावोत्पादक बनानेमे सगीतका भी बहुत अधिक हाथ है। भावनाओको व्यजित करनेवाले पृष्ठ-भूमि-सगीतसे मोनोलॉगमे प्रभावोत्पादकता लायी जा सकती है। स्थान-स्थानपर 'शाति'का भी उपयोग किया जा सकता है। ये सभी साधन रेडियो-नाटकके सभी प्रकारोके लिए आवश्यक है, पर मोनोलॉगमे कथनोप-कथनकी कमीकी पूर्तिके उद्देश्यसे इनपर विशेष ध्यान दिया जाता है।

हिंदीमे रेडियो-मोनोलॉग बहुत कम, नहीके बराबर लिखे गये है। यह क्षेत्र बिलकुल खाली है। रेडियो-नाटक लिखनेके आकाक्षी कलाकार अपनी रचनाओ-द्वारा इसे समृद्ध कर सकते है।

संगीत-रूपक

ऑल इंडिया रेडियोके विभिन्न स्टेशनोंसे 'संगीत-रूपक' नामसे भी कुछ रचनाएँ प्रसारित की जाती हैं। इन संगीत-रूपकोंमें गीतोंकी प्रधानता होती है, जिन्हें एक-दो नैरेटर अपनी उक्तियोंसे संबद्ध कर देते हैं। एक उदाहरण-द्वारा संगीत-रूपकका स्वरूप-विधान समझा जा सकता है। 'शरद-यामिनी'-का एक अंश देखिए—

समवेत—(गीत) आओ, शरद-हासिनी आओ!
गगन-वासिनी, उतर धरापर
मंगल-कण बिखराओ!
जीवन-नभमें मेघ घिरे हैं
धरती है अकुलाती,
दसों दिशाएँ बनीं श्यामला,
रजनी घिर-घिर आती,
ज्योतिर्मयि शुभ शरद-शर्वरी,
ज्योति-किरण बरसाओ!
धरती यह हो रही पंकिला,
क्षुब्ध विकल सब प्राणी,
बुला रही है तुम्हें क्षितिजसे
जन-जनकी मृदु वाणी,
जीवनके कर्दममें अभिनव
शुभ्र कमल सरसाओ!

पुरुष-स्वर—गूँज उठी जन-जनकी वाणी,
गूँज उठे धरती औ अंबर,
शरद-यामिनी लगी उतरने
शुभ्र मेघके उज्ज्वल रथपर!

स्त्री-स्वर—काले काले बादल पलमें बिखर गये,
उज्ज्वल उज्ज्वल नभ-पथ क्षणमें निखर गये,
शरद-यामिनीका रथ नभसे उतर चला,
महाशून्यमें लगी तैरने ज्योति-कला !

पुरुष—(गीत)

शरदकी कुमारी चली आ रही है !
वसन शुभ्र झिलमिल पवन है उड़ाता,
विहँसता वदन चाँद-सा मुस्कुराता,
नयन खंजनों-से, हँसी काँस-सी है,
प्रभा देखकर है कुमुद-वन लजाता,
मचलती, थिरकती विभा-रश्मियोंपर
गगनकी दुलारी चली आ रही है !
लिये हाथमें धानकी मंजरी है,
जवा-फूल, शेफालिकासे भरी है,
खचित हैं वसनमें सुमन शुभ्र अगणित,
सुमन-शोभिता यह सुमन-अप्सरी है,
धराको नवल दान देने सुमनके,
सुमनकी सँवारी चली आ रही है !

स्त्री-स्वर— रथ इतना नीचे उतर गया,
शारदी आ गयी धरतीपर,
आनंद-मुग्ध हो रहा विश्व,
हो गये मुग्ध गिरि, तरु, निर्झर !

पुरुष-स्वर—शरद-यामिनी शरद-लक्ष्मी बन
जगमें अवतरित हो गयी !

स्त्री-स्वर—बरस पड़े जन-जनके करसे
अभिनन्दनके फूल चरणपर,

अभिनन्दनकी मधुमय ध्वनिसे,
गूज उठे दिशि-दिशि औ अम्बर !

समवेत—(गीत)

ज्योति-चरण शरद-शिखे,
जयति, जयति, जय हो !
धरतीके भाग्य जगे,
उतरी तू अम्बरसे,
आशाएँ जाग उठी,
सपने सब हरखे,
वरदे, तू वर दे यह,
जग ज्योतिर्मय हो !

इस प्रकार सगीत-रूपकोमे गीतोकी प्रधानता रहती है। नैरेटरके कथन-द्वारा ये गीत परस्पर जुडे रहते है। कुछ रूपकोमे नरेटर गद्य या पद्यमे बोलते है। आजकल प्रचलित सगीत-रूपकका स्वरूप-विधान यही है।

अब मै इस बातपर विचार करना चाहता हूँ कि इस स्वरूप-विधान और इसके नामकी सार्थकता क्या है। 'सगीत-रूपक' नाम 'रूपक'से भी अधिक भ्रामक है। जैसा हम देख चुके है, रूपकोमे यथातथ्य घटनाओ, कार्यो एव विषयोका नाटकीकरण किया जाता है। सगीत-रूपकोमे इस बातका नितात अभाव रहता है। इनमे किसी भी विषयका यथातथ्य वर्णन नही रहता। जिस वास्तविकताकी माँग रूपकमे की जाती है, वह सगीत-रूपकमे नही मिलती। इसका यह अर्थ कदापि नही कि सगीत-रूपकमे वास्तविकता नही रहती, वह असत्य होता है। सगीत-रूपकमें भी वास्तविकता रहती है, पर यह वास्तविकता तथ्योकी नही, भावनाओ तथा अनुभूतियोकी वास्तविकता होती है, और यह वास्तविकता तो नाटक, कहानी, उपन्यास, काव्य आदि सब स्वरूप-विधानोकी अनिवार्यता है। अत 'सगीत-रूपक'मे आये 'रूपक' शब्दकी कोई सार्थकता नही ज्ञात होती। सभवत 'सगीत-रूपक'को 'रूपक' इसलिए कहा जाता

है कि उसमें नैरेटर होते हैं, लेकिन जैसा कि हम पहले विचार कर चुके हैं, केवल नैरेटर या नैरेटरके रहनेसे ही कोई रचना 'रूपक' नहीं हो जाती।

हाँ, कुछ परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं, जिनमें 'संगीत-रूपक' अपने नामकी सार्थकता सिद्ध कर सकता है। यदि किसी संगीतज्ञ अथवा कविके जीवन एवं कृतियोंपर कोई रूपक लिखना हो, तो उसके गीतोंमें जीवनकी यथातथ्य वास्तविकता निहित हो सकती है।

प्रश्न यह अवश्य उठता है कि जब 'संगीत-रूपक' नाम सार्थक नहीं है, तो उसे क्या कहा जाय? इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए हमें प्रचलित संगीत-रूपकोंकी विषय-वस्तु एवं प्रकारोंपर विचार करना होगा। आजकल जो संगीत-रूपक लिखे जाते हैं, वे निम्नलिखित कोटियोंमें आ सकते हैं —

(१) जो कल्पित कहानियोंपर आधारित होते हैं,

(२) जो कवियों और संगीतज्ञोंके जीवनपर आधारित होते हैं,

(३) जिनमें प्राकृतिक सौंदर्य चित्रित होता है, और

(४) जिनमें पर्याप्त नाटकीयता भी रहती है। एक विशेषता तो इन सबमें रहती ही है कि इनमें संगीतकी प्रधानता रहती है।

तो, पहली श्रेणीकी रचनाओंको हम सरलतासे 'संगीत-कहानी' कह सकते हैं, और दूसरी श्रेणीकी रचनाओंको 'संगीत-रूपक'। तीसरी श्रेणी-की रचनाएँ 'संगीत-चित्र' कही जा सकेंगी, और चौथी श्रेणीकी रचनाएँ 'संगीत-नाटक'। इस प्रकार यदि रचनाओंके स्वरूप-विधानका नामकरण किया जाय, तो इसमें वैज्ञानिकता आएगी। इन नामोंके अर्थ भी स्वतः स्पष्ट हैं। 'संगीत-कहानी'से लोग सरलतासे समझ सकेंगे कि यह ऐसी कहानीके लिए है, जिसमें संगीतकी प्रधानता है, उसी प्रकार अन्य नाम भी सहज बोधगम्य हैं।

इन सब रचनाओंके लिए 'रूपक'के प्रसंगमें कही गयी बात दुहरायी जा सकती है कि इनका सुसंगठित होना अनिवार्य है। ऐसा होनेसे ही ये श्रोताओं-पर एक निश्चित प्रभाव छोड़ सकेंगी। आजकल बहुत-से ऐसे 'संगीत-

रूपक' देखनेको मिलते है, जिनके गीत विभिन्न परिस्थितियो एव वातावरणमे लिखे गये होते है, जिन्हे नेरेटरोकी उक्तियोसे परस्पर जोड दिया जाता है। ऐसी रचनाओके गीत बिखरे-बिखरे-से लगते है, और उनसे श्रोतापर एक निश्चित प्रभाव नही पड पाता। इसलिए सफल सगीत-रचनाओके लिए अनिवार्य है कि वे सुसबद्ध और सुसगठित हो।

ऐसी सगीत-रचनाओका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। इन नये स्वरूप-विधानोमे यत्र-तत्र गुँथे हुए छोटे-छोटे गीत लोगोका मनोरजन भी करेगे और सगीतको लोकप्रिय भी बनानेमे समर्थ हो सकेगे।

टेकनीक-सबधी केवल उन्ही बातोपर यहाँ प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जाएगा, जो रेडियो-नाटककारके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

सबसे पहले हम स्टूडियोको देखे। रेडियो-नाटक स्टूडियोसे ही प्रसारित किये जाते हैं। कभी एक ही स्टूडियोसे काम चल जाता है, कभी कई स्टूडियोका उपयोग करना पडता है। स्टूडियोसे नाटक किस प्रकार प्रसारित किये जाते हैं, इसे जाननेके लिए स्टूडियोके आकार-प्रकार, उसमे स्थित यत्र आदिका सामान्य ज्ञान अपेक्षित होगा। सभी स्टूडियोकी न एक निश्चित रूप-रेखा होती है, न सबमे समान सुविधाएँ ही प्राप्त होती हैं। जो स्टेशन जितने बडे और सुविधा-सम्पन्न होते है, उनमे नाटक-प्रसारणके उतने ही साधन रहते है। हमारा काम यहाँ एक सामान्य स्टूडियोके परिचयसे चल जाएगा। एक नक्शाके द्वारा हम इस स्टूडियोका परिचय सरलतासे प्राप्त कर सकते हैं।
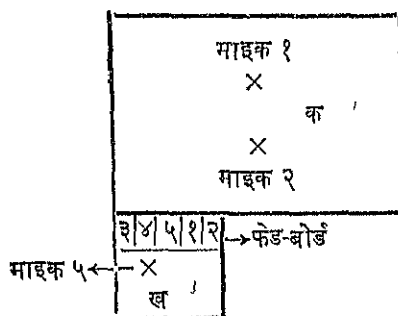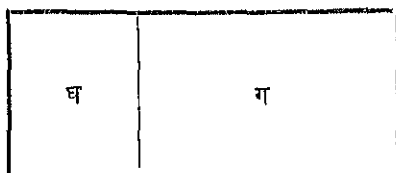
नाटक प्रसारित करनेके लिए साधारणत एक बडा स्टूडियो काममें लाया जाता है। नक्शामे हम उसे क मान सकते हैं। उसकी बगलमे प्रस्तुत-

कर्त्ता (P1oducer) का छोटा-सा कमरा है—ख। कही-कही उद्-घोपक (announce1) भी वहीसे बोलना है, कही-कही उसके लिए स्वतन्त्र कमरा भी होता हे। क ओर ख के बीचमे आने-जानेका रास्ता नही होता, वहाँ एक बडा-सा शीशा लगा रहता है। प्रस्तुतकर्त्ता और अभिनेता एक-दूसरेको देख सकते ह, पर साधारण ढगसे एक-दूसरेकी बाते नही सुन सकते, इसके लिए जिन यन्त्राका सहारा लेना पडता है, उन्हें फेडर (fade1) कहते है। फेडरोको हम माइक्रोफोनोके स्विच कह सकते है। कार्यक्रम प्रसारित करनेके लिए इन्हीके द्वारा माइकको ध्वनिग्राहक बनाया जाता हे, अन्यथा वे निष्क्रिय अवस्थामे पडे रहते हे। ये फेडर प्रस्तुतकर्त्ताकी टेबुलपर सामने फेड-बोर्डपर रहते हे। इन फेडरोका सबध विभिन्न माइक्रो-फोनो ओर स्टूडियोसे रहता हे। जैसे, फेडर न० १ का सबध माइक्रोफोन न० १ से है, फेडर न० २ का माइक्रोफोन न० २ से, फेडर न० ३ का स्टू-डियो ग से, फेडर न० ४ का स्टूडियो घ से और फेडर न० ५ का सबध माइक्रोफोन न० ५ से हे। प्रस्तुतकर्त्ता एक ही स्थानपर बैठा हुआ विभिन्न स्टूडियो और माइक्रोफोनोसे सबध स्थापित कर सकता है। रिहर्सलके समय यदि उसे अभिनेताओसे कुछ कहना हुआ, तो फेडर न० ५ ऊपर उठाकर कह देगा और फेडर न० १ या २ उठाकर उनका उत्तर सुन लेगा। प्रसरणके समय ध्वनि-प्रभाव भी दूसरे स्टूडियो यानी स्टूडियो घ से दिये जाते हैं, पर प्रस्तुतकर्त्ता उन्हे फेडर न० ४ के द्वारा स्टूडियो क से प्रसारित नाटकसे सबद्ध कर देगा। इसी प्रकार यदि नाटकमे वाद्य सगीतकी आवश्यकता हुई, तो स्टूडियो ग मे प्रस्तुत वाद्य सगीतको फेडर न० ३ के द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। इन फेडरोकी एक विशेषता यह भी है कि इन्हीके द्वारा ध्वनियो-का सतुलन किया जाता है। फेडरके एक सिरेपर ध्वनि बहुत क्षीण सुनायी पडती है, दूसरे सिरेपर बहुत जोरसे। आवश्यकतानुसार फेडरको कम या अधिक खोला जा सकता है, बिजली पखेके स्विचकी तरह। उदाहरणके लिए, ट्रेनका ध्वनि-प्रभाव देनेके लिए स्टूडियो घ मे इस ध्वनि-प्रभावका एक रिकार्ड बजाया जा रहा है। नाटकमे यदि यह दिखलाना हुआ कि ट्रेन

दूरसे क्रमश निकट आ रही है, तो प्रस्तुतकर्त्ता ध्वनि-प्रभावके फेडरको धीरे-धीरे खोलता चला जाएगा, फलत ट्रेनकी आवाज क्रमश तेज होती जाएगी। ये बाते प्रस्तुतकर्त्तासे ही सबध रखती हैं, नाटक-लेखक अपनी रचनामे आवाजकी कमी-बेशीका उल्लेख भर कर देता है।

प्रसरणके सभी कार्य माइक्रोफोन-द्वारा ही होते हैं। इसी यत्रके द्वारा सभी ध्वनियाँ स्टूडियोसे प्रसारित की जाती है। अभिनेता इन्ही माइक्रोफोनोमें बोलते है, जैसे ये ही उनके श्रोताओके कान हो। आवाज जैसे ही माइक्रोफोनको छूती है, वह विद्युत्-तरगो (clectrical waves) मे परिवर्त्तित हो जाती है। ये विद्युत्-तरगे तारके सहारे ट्रासमीटर तक भेजी जाती हैं। ट्रासमीटर स्टूडियोसे कुछ ही मीलकी दूरीपर रहते हैं। स्टूडियोसे ट्रासमीटर तक पहुँचनेमे आवाज कमजोर न हो जाय, न उसमे कोई विकृति ही आ जाय, इसपर पूरा ध्यान रखा जाता है। ट्रासमीटर तक पहुँचने पर ये विद्युत् तरगे बेतार-तरगो या रेडियो-तरगो (clectro-magnetic waves) मे परिवर्त्तित हो जाती हैं। ट्रासमीटर इन रेडियो-तरगोको ईथरके द्वारा बडी तीव्र गतिसे भेजता है। हमारा रेडियो-रिसिविंग सेट इन्हे ग्रहण करता है, और फिर कई प्रक्रियाओके बाद हमारे रेडियो-सेटका लाउडस्पीकर इन रेडियो-तरगोको ध्वनि-तरगो (sound waves) मे पुन परिवर्त्तित कर देता है, तभी हम स्टूडियोसे प्रसारित ध्वनियोको सुन पाते हैं।

अभी ऊपर कहा गया है कि रगमच-नाटकके दर्शक जितनी देरमें अभिनेताओकी आवाज सुनते हैं, उससे पहले ही कोसो दूर बैठा हुआ रेडियो-नाटकका श्रोता अपने अभिनेताओकी आवाज सुन लेता है। ऐसा इसलिए होता है कि रेडियो-तरगोकी गति बहुत ही तेज होती है। सामान्य ध्वनि लगभग ११०० फीट प्रति सेकेंडकी गतिसे चलती है, पर रेडियो-तरगोकी गतिका वेग है---१८६००० मील प्रति सेकेंड अथवा ३०००००००० मीटर प्रति सेकेंड। ध्वनि-तरग और रेडियो-तरगकी गतिका अतर एक उदाहरण-द्वारा बडी सरलतासे समझा जा सकता है। एक व्यक्ति यदि किसी स्थानसे

बोलता है, तो उसकी आवाज पृथ्वीका चक्कर काटकर फिर उस मनुष्यके पास आनेमे कम-से-कम ४० घटे लेगी, जबकि रेडियो-तरग एक सेकेंडमें पृथ्वीके साढे सात चक्कर काट लेती है। यही कारण है कि एक स्टूडियोकी प्रसारित ध्वनियाँ दूर-दूर देशोमे तत्क्षण ही सुनायी पड जाती है। जैसे ही अभिनेताकी आवाज स्टूडियोके माइक्रोफोनको छूती है, ठीक उसी क्षण हम उसे अपने रेडियो-सेटपर सुनते हैं। यह सोचकर रेडियो-अभिनेता अनुभव कर सकता है कि वह अपने श्रोताओके कितना निकट है।

माइक्रोफोन कई प्रकारके होते है। एक गोलाकार (Omni-direc-tional) होता है, जो सभी दिशाओकी ध्वनियोको समान रूपसे ग्रहण करता है। एक माइक्रोफोन एक-मुखी (Clock-face) होता है, जो केवल एक ही दिशाकी ध्वनियोको ग्रहण कर सकता है, और एक माइक्रोफोन द्विमुखी (Bi-directional) होता है, जो दो विभिन्न दिशाओकी ध्वनियोको प्रत्यक्ष रूपसे ग्रहण करता है। नाटक-प्रसरणके लिए सामान्यत इस द्विमुखी माइकका ही व्यवहार किया जाता है। यो होता तो यह चतुर्मुखी है, पर इसके केवल दो ही पक्ष सक्रिय एव प्रभाव-ग्राहक होते हैं, अन्य दो पक्ष निष्क्रिय होते है। सक्रिय पक्ष चौडे होते हैं, और निष्क्रिय पक्ष पतले। ऊपरसे देखनेपर इसका नक्शा इस प्रकार होगा।
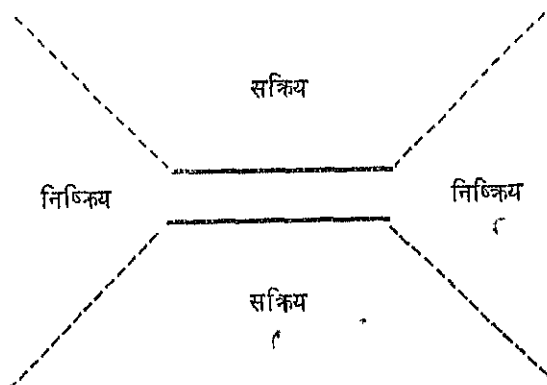
इस माइक्रोफोनकी अपनी विशेषताएँ होती हैं । यदि कोई व्यक्ति निष्क्रिय पक्षकी तरफ बोलता है, तो उसकी आवाज बहुत क्षीण सुनायी पडती है, क्योंकि सक्रिय पक्ष उस आवाजको प्रत्यक्ष रूपसे ग्रहण नही करता । फलत पात्रोके प्रवेश और प्रस्थान सूचित करनेमे इससे बडी सहायता मिलती है । यदि कोई व्यक्ति निष्क्रिय पक्षकी ओरसे बोलता हुआ सक्रिय पक्षकी ओर चला आये, तो ज्ञात होगा, जैसे वह कुछ गजकी दूरीसे क्रमश निकट आ गया है । इसी प्रकार प्रस्थान सूचित करनेके लिए अभिनेता सक्रिय पक्षकी ओरसे बोलते हुए निष्क्रिय पक्षकी ओर चले जाते है । निष्क्रिय पक्षकी ओर जोरसे बोलकर यह भी सूचित किया जाता है कि कोई पात्र बद दरवाजेकी दूसरी तरफसे बोल रहा है । दरवाजा खुलनेका ध्वनि-प्रभाव मिलनेके बाद वह पात्र सक्रिय पक्षकी ओर चला जाता है । इससे ज्ञात होगा कि वह कमरेमे आ गया । द्विमुखी माइक्रोफोनकी एक उपयोगिता यह भी है कि अभिनेता नाटककी प्रति *(Script)* निष्क्रिय पक्षकी ओर रखकर बोल सकते हैं, जिससे कागजकी खडखडाहट बाहर न सुनायी पडने पाये ।

दूरीकी व्यजना रेडियो-नाटकमे बडी सरलतासे होती है । यह इस बातपर निर्भर है कि अभिनेता और माइकके बीचकी दूरी कितनी है । जैसे, यदि यह दिखलाना हुआ कि किसी नदी या निर्झरके दो तटोपर खडे हुए दो व्यक्ति आपसमे बाते कर रहे हैं, तो एक माइकके निकट रहेगा, दूसरा उससे कुछ दूर । कौन अभिनेता कब माइकके किस कोणपर, और कितनी दूरीसे बोले, इन सभी बातोका निश्चय नाट्य-निर्देशक रिहर्सलके समय कर देता है ।

नाटक-प्रसरणके समय आवश्यकतानुसार एक या एकसे अधिक माइक्रोफोनोको काममें लाया जाता है । सामान्य स्टूडियोमे दो माइक्रोफोन रहते हैं, एकपर प्रमुख पात्र या नैरेटर बोलते हैं, दूसरेपर अन्यान्य पात्र । माइक्रोफोन अपने स्थानपर स्थिर रहते हैं, अभिनेता ही आवश्यकतानुसार

अपनी दूरी और कोणमे परिवर्त्तन कर विभिन्न प्रभावोकी सृष्टि किया करते है।

घडीकी चर्चाके बिना स्टूडियोका परिचय अपूर्ण ही रहेगा। दीवारकी घडी, पर नि शब्द घडी एक-एक सेकेडकी गिनती करती हुई चलती रहती है, और प्रस्तुतकर्त्ता एव अभिनेताओको बतलाती रहती हे कि उन्हे अपना अभिनय एक निश्चित अवधिमे ही समाप्त कर देना है।

'ध्वनि-प्रभाव' के प्रसगमे हम पीछे देख आये हैं कि ये रेडियो-नाटकके बडे प्रभावशाली साधन हैं। इनके-द्वारा कुछ ही क्षणोमें अपेक्षित वातावरण-की सृष्टि हो जाती है, आफिस, सडक, बाजार, नदी-तट आदिकी व्यजना हो जाती है। रेडियो-नाटकमे दिलचस्पी रखनेवाले व्यक्तियोके मनमें यह जिज्ञासा होती हे कि ध्वनि-प्रभाव किस प्रकार उत्पन्न किये जाते है। जैसा हम अभी देख चुके है, ध्वनि-प्रभावोके लिए एक स्वतत्र स्टूडियोका व्यवहार किया जाता है। ध्वनि-प्रभाव दो प्रकारसे दिये जाते हैं—(१) स्टूडियोमे ही उत्पन्न करके, और (२) रिकार्ड-द्वारा। ध्वनि-प्रभावके स्टूडियोमे कुछ वस्तुएँ पहलेसे ही रखी रहती हैं, जिनकी आवश्यकता ध्वनि-प्रभाव देनेके लिए होती है। ये ध्वनि-प्रभाव जिस प्रकार उत्पन्न किये जाते हैं, वह बहुत लोगोके लिए आश्चर्यका विषय होगा। उदाहरणके लिए, जब स्टूडियोमे कागजपर बालू गिराया जाता है, तब नाटक सुनने-वाले समझते हैं कि वर्षा हो रही है। सब प्रकारके ध्वनि-प्रभावोको स्टू-डियोमे उत्पन्न कर सकना सभव नही होता, फलत अधिकाश ध्वनियोके रिकार्ड रखे जाते हैं, जो अपेक्षित स्थलोपर बजा दिये जाते हैं। रिकार्ड बजानेके यत्र, जिन्हे ग्रामोफोन टर्नटेबुल (gramophone turntables) कहते है, ध्वनि-सयोजककी बगलमें ही रहते है। हाँ, यह प्रश्न अवश्य हो सकता है कि जब नाटक एक स्टूडियोसे प्रसारित किया जाता हे और ध्वनि-प्रभाव दूसरे स्टूडियोसे दिये जाते हैं, तब नाटकके उचित स्थलोपर उचित ध्वनि-प्रभाव कैसे दिये जाते है? बात यह होती है कि ध्वनि-सयोजकके हाथमें भी नाटककी एक प्रति रहती है, जिसमें अकित किया रहता है कि

किन-किन स्थलोपर कौन-कौन-से ध्वनि-प्रभाव देने हैं। ध्वनि-सयोजक हेड-फोनपर नाटक सुनता रहता है। साथ ही प्रस्तुतकर्त्ताकी ओरसे उसे नाटकके अकित स्थलोपर प्रकाश-सकेत मिलते रहते हैं। इसीसे वह उचित स्थलोपर निर्दिष्ट ध्वनि-प्रभाव देनेमे भूल नही करता। ध्वनि-सयोजकका काम बडी सतर्कता और कुशलताका है। थोडी-सी असावधानीसे भी हवाई जहाजके स्थानपर मोटरकी आवाज सुनायी पड सकती है अथवा पात्रकी 'आह' पहले सुनाई पडे और पिस्तोलकी आवाज बादमे।

प्रोड्यूसरके कट्रोल-बोर्डपर एक यन्त्र और भी होता है, जिसके-द्वारा वह अभिनेताओकी आवाजमे परिवर्त्तन कर सकता है। इसे फिल्टर (Filter) कहते हैं। इसके-द्वारा आवाजको तीखा, कर्कश, गभीर, खोखला आदि किया जा सकता है। उदाहरणके लिए, 'अभिशप्त' नाटकमे यह दिखलाना था कि अश्वत्थामा आजसे कई हजार वर्ष पहलेका मनुष्य है—आजके मनुष्योसे भिन्न। फलत उसकी आवाज फिल्टरके द्वारा इस प्रकार बदल दी गयी कि उसके विराट् व्यक्तित्वका आभास श्रोताओको मिल सके।

स्टूडियोमे पर्दे नही होते, उनकी आवश्यकता ही नही होती, फिर भी रेडियो-नाटकमे दृश्य-परिवर्तन किये जाते हैं, इसका उल्लेख हम पीछे कर आये हैं। दृश्य-परिवर्त्तन वाद्य सगीत अथवा क्षणिक शातिसे तो किये ही जाते हैं, स्वरोदय (Fade in),[1] स्वर-विलयन (Fade out)[2] और स्वर-परिवर्त्तन (Cross Fade)[3] से भी किये जाते हैं।

---

१ Fade In—A scene 'Fades In' Opening line, or musical or sound effect increases gradually in volume until at normal level

२ Fade Out—A scene 'Fades Out' Closing line, or musical or sound effect gradually decreases in volume

३ Cross Fade Fading out one set of sound, music or dialogue, and simultaneously fading in another

—Glossary of Radio Terms in 'One Hundred Non Royalty Radio Plays'

जब कोई ध्वनि मद-मद सुनायी पडती हुई जोरसे सुनायी पडने लगती है, तो उसे स्वरोदय कहते है, और इसकी विपरीत स्थितिको स्वर-विलयन। यह फेडरके द्वारा किया जाता है। अभिनेताओकी गतिके द्वारा भी स्वरोदय तथा स्वर-विलयन होते हैं। अभिनेता जब माइकके निष्क्रिय पक्षकी ओर-से सक्रिय पक्षकी ओर अथवा दूरसे माइकके निकट आता है, तब स्वरोदय होता हे और इसके ठीक विपरीत स्वर-विलयन। इनके उदाहरण पहले दिये जा चुके हे। एक प्रकारकी ध्वनियोके समाप्त होते-होते दूसरे प्रकारकी ध्वनियोका स्पष्ट सुनायी पडने लगना स्वर-परिवर्त्तन कहलाता है। यह भी दृश्य-परिवर्त्तनका एक प्रभावशाली साधन है। इसका एक उदाहरण पीछे 'अबपाली'के रेडियो-रूपातरके प्रसगमें (पृ० ९५-९६) मे दिया जा चुका हे। दूसरा उदाहरण पृष्ठ ५८ मे देखा जा सकता है। परिवर्त्तित होने-वाली दोनो ध्वनियाँ जितना ही एक-दूसरीसे भिन्न प्रकारकी होती हैं, उनसे उतने ही शक्तिशाली प्रभावकी सृष्टि होती है। अभी जिस उदाहरणका सकेत किया गया है, उसमे इस विशेषतापर ध्यान दिया जा सकता है।

फिल्मोमे व्यवहृत एक साधन सयुक्त दृश्यक्रम (montage)[१]का भी रेडियो-नाटकमे व्यवहार किया जाता है।[२] सयुक्त दृश्यक्रममे छोटे-

---

१. Montage—A swift succession of individual voices, or of very brief scenes, or of musical and sound effects or of any combination of the preceding Montage is used to widen the scope of action by showing parallel events, to show time lapse through a swift succession of events and to achieve sharp contrasts —Glossary of Radio Terms in 'One Hundred Non Royalty Radio Plays'

२ This is not in the least a circumstance peculiar to the cinema, but is a phenomenon invariably met with in all cases where we have to deal with juxtaposition of two facts, two phenomena, two objects

—'The Film Sense'

छोटे अनेक दृश्यो अथवा ध्वनियोका इस प्रकार सयोजन किया जाता है कि सयुक्त रूपमे उनसे एक नये प्रभावकी सृष्टि हो। सर्जी आइसटीनका तो कहना है कि इस साधनका उपयोग सभी क्षेत्रोमे किया जाता है। रेडियो-नाटकमे सयुक्त दृश्यक्रमसे अनेक प्रकारके प्रभाव उत्पन्न किये जाते है। इससे यह दिखलाया जाता है कि घटना विशेषकी समानान्तर प्रतिक्रिया किस प्रकार होती है। उदाहरणके लिए, एक महान् व्यक्तिके निधनकी समाजके विभिन्न क्षेत्रोमे क्या-क्या प्रतिक्रिया होती है, यह सयुक्त दृश्यक्रम-द्वारा दिखलाया जा सकता है। इससे पात्रविशेषकी मानसिक उद्विग्नताका प्रभावशाली चित्र अकित किया जा सकता है। एक उदाहरण इस प्रकारका हो सकता है—

स्वर १—जगह खाली नही है।
स्वर २—शादी कर लो विमल।
माँ —अब मेरे दिन लौटेगे।
स्वर ३—बधाई है विमल, तुम परीक्षा पास कर गये।
स्वर १—जगह खाली नही है।
स्वर २—शादी कर लो विमल।
माँ —अब मेरे दिन लौटेगे।
स्वर ३—कितने भाग्यवान हो विमल! इतना अच्छा क्लास मिला है तुम्हे।
स्वर १—जगह खाली नही है।
स्वर २—शादी कर लो विमल।
माँ—अब मेरे दिन लौटेगे।
स्वर ३—बधाई है विमल। मिहनतका फल तुम्हे अवश्य मिलेगा। मिहनतका फल तुम्हे अवश्य मिलेगा।
विमल—(तेज आवाजमें) झूठ! झूठ! झूठ कह रहे हो तुम! (सँभलकर) उफ्! यह क्या कर रहा हूँ मै! कोई सुनेगा, तो क्या कहेगा! (हल्की हँसी)

सयुक्त दृश्यक्रम प्रस्तुत करनेके लिए स्वरोदय, सगीत आदिका सहारा लिया जाता है।

टेलीविज़न-नाटक : रेडियो-नाटक

रेडियो-नाटककी टेकनीकका विवेचन करते समय हमने यह अच्छी तरह देख लिया कि सामान्य नाटकोंसे रेडियो-नाटककी कला बहुत भिन्न है। वैज्ञानिक प्रगतिके साथ-साथ नाट्य-स्वरूपोंमें परिवर्त्तन होते जाते हैं। रंगमंच-नाटक, फिल्म-नाटक और रेडियो-नाटक हमारे सामने हैं, इनकी अगली कड़ीमें आ रहा है टेलीविजन-नाटक। टेलीविज़नका आविष्कार हो चुका है, और उसके माध्यमसे ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली, रूस, डेनमार्क आदि अनेक देशोंमें नाटक प्रसारित किये जाने लगे हैं। हमारे यहाँ अभी टेलीविजन नहीं आया है, पर आएगा अवश्य, इतना निश्चित है, और, लोगोंके मनमें स्वाभाविक शंका होती है कि क्या टेलीविजन-नाटक रेडियो-नाटकको अपदस्थ कर देगा? ऐसी शंका वहाँके लोगोंके मनमें भी होती है, जहाँ टेलीविजनका उपयोग होने लगा है। इंगलैंडके श्री फेलिक्स फेल्टन लिखते हैं —

'One of these days, radio is going to find that its glasses have been mended by television When that happens, will it survive, or, like the old mail-coach, will it be put affectionately but finally away? If it disappears, I believe that something, perhaps even a great deal, will be lost But whichever the answer is to be, the coach is still on the road and it looks as if it still has a good way to travel'

हमलोगोंके लिए टेलीविजन अभी दूरकी चीज है, इस तरहकी शंका-आशंकाओंसे कोई लाभ नहीं दीखता।

कुछ लोगोके मनमे यह भी जिज्ञासा होती है कि टेलीविजन--नाटकका स्वरूप-विधान कैसा होगा ? इस सबधमे भी कुछ कहना असामयिक-जैसा लगता है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि टेलीविजन-नाटककी अपनी सीमाएँ और अपनी विशेषताएँ होगी। वह रेडियो-नाटककी तरह मात्र श्रव्य न रहकर, दृश्य भी हो जाएगा। रेडियो-नाटककी तरह वह काल और स्थानके बधनोसे मुक्त नही रह जाएगा, उसमे सकलन-त्रय पर ध्यान देनेकी आवश्यकता पड जाएगी। टेलीविजन-नाटकमे दृश्य, वस्त्राभूषण, पात्रोके अग-सचालन, भाव-भगिमा आदिका भी उपयोग करना पडेगा। नाटककारकी दृष्टिसे टेलीविजन-नाटककी कला रेडियो-नाटकके निकट न होकर, फिल्म-नाटकके निकट होगी। उसका प्रभाव लघु-रूप-रगमचके समान किन्तु अधिक चलचित्रात्मक होगा, क्योकि टेलीविजनका पर्दा चलचित्रसे काफी छोटा और सपाट होता है। वास्तवमे टेलीविजनकी कला कैमरा और माइक्रोफोनकी कला होगी। उसका स्वरूप-विधान कैसा होगा, यह अभी निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता। बी० बी० सी०मे भी अभी प्रयोग ही हो रहे हैं। वहाँके अधिकारी श्री भॉल गिलगुडने स्वय लिखा है—'It may well be that, with the passing of time and as the result of vigorous and imaginative experiment, indigenous form of piece for television may be evolved; a form that will approximate far more nearly in lay out to a film script than to that of play for sound broadcasting To date, that form has not evolved and I would hesitate to say that even the embryo of such a form is in existence. If I am asked to give practical advice to the writer who is interested in television, I think that I could do no more than to urge him to buy a set and watch results.'

तात्पर्य यह कि वहाँ भी टेलीविजन-नाटककी कला अभी प्रयोगावस्था-मे ही हे। आशा की जा सकती है कि जबतक हमलोगोके यहाँ टेलीविजन आएगा, तबतक टेलीविजन-नाटककी कला बहुत कुछ निखरेगी, और बी० बी० सी० के अनुभवोसे हम लाभ उठा सकेंगे।

अभी तो हमे रेडियो-नाटककी सभावनाओपर ही ध्यान देना हे। हमारे यहाँ रेडियो-नाटकके प्रारभ हुए अभी बीस वर्ष भी नही हुए। पहला नाटक १९३६ मे आल इडिया रेडियोके दिल्ली स्टेशनसे प्रसारित हुआ था। वह नाटक भी वास्तवमें रगमचके लिए लिखे गये एक बॅगला-नाटकका रूपान्तर था। अभी भी केवल रेडियोको ध्यानमे रखकर हमारे यहाँ कम ही नाटक लिखे जाते हैं। लब्धप्रतिष्ठ नाटककारोके सबधमे भी यह बात कही जा सकती है कि केवल रेडियोके लिए कम ही लोग लिखते है। फलत ऐसे रेडियो-नाटक, जिनमे रेडियो-टेकनीककी सभावनाओका अधिकाधिक उपयोग किया जाय, कम ही मिलते है। आल इडिया रेडियोके एक अधिकारी श्रीकृष्ण शुक्लने सत्य ही कहा है—'A completely radiogenic play is rare We have broadcast few plays which were written especially for the medium Most plays, however, suffer from poor craftsmanship Their structure needs visual props The dialogue lacks the rhythms and modulations of the natural voice It belongs to the printed page and is not speech for an actor's tongue'

इससे सरलतासे समझा जा सकता है कि हमारे यहाँ रेडियो-नाटककी कलापर कम ध्यान दिया गया है, और इसकी सभावनाओका कम उपयोग हुआ है। यह क्षेत्र रिक्त है, और इसमें काम करनेवालोके लिए भविष्य आशामय हे। जबतक टेलीविजन नहीं आता, तबतक उसकी चिंता किये बिना रेडियो-नाटककी कलापर ही ध्यान देना उचित हे।

परिशिष्ट

संघर्ष

(वाद्य संगीतसे दृश्य प्रारंभ)

(छेनी और हथौड़ीसे मूर्त्ति गढ़नेकी 'खट्-खट्' आवाज)

पंकज (धीरे धीरे)

प्रस्तरमें जीवन जागेगा !
मेरी साधना न हार कभी भी मानेगी !
मैं अपने हाथोंसे गढ दूंगा नई मूर्त्ति !
पत्थर जीवित जाग्रत बनकर मुस्काएगा !
इसका अंतर मचलेगा,
आँखे चमकेंगी,
मुखकी अंकित रेखाएँ
अपने मौन स्वरोंमें गाएँगी !
मेरी साधना, न ठहर तनिक,
तू चलती जा !

(मूर्त्ति गढ़नेकी आवाज)

पंकज

मैं अपने आघातोंसे
प्रतिपल जगा रहा हूँ नयी ज्योति,
संसार तनिक जिसकी छायामें मुस्काए !

(मूर्त्ति गढ़नेकी आवाज)

पंकज

यह निर्जनताका राज्य,
यहाँ कोई न और।
जगके कोलाहल, संघर्षोंसे दूर,

यहाँ है अभय शान्ति ।
है शाति भग होती
मेरी छेनीकी 'खट्-खट्'से ही, बस ।
इस निर्जनतामें जाग रहा मै ही केवल,
सोये पत्थरको जगा रहा ।
मै कलाकार हूँ, शिल्पी हूँ ।

पकजका मन

तुम कलाकार ही नही,
नही शिल्पी केवल,
तुम रक्त-मासके पुतले भी, मानव भी हो !

पकज

यह कैसी ध्वनि ?
सुनता हूँ क्या ?

मन

तुम कलाकार ही नही,
नही शिल्पी केवल,
मानव भी हो !

पकज

तुम कौन ?
कहाँसे बोल रहे ?
मैं तुम्हे देखता यहाँ नही,
लेकिन आवाज सुन रहा हूँ ।

मन

मैं तो तुमसे
कुछ कहता रहता हूँ सदैव,
जिसको तुम सुनकर भी
न कभी हो सुन पाते मेरे पकज !

पकज

पकज ?
सबोधित करते हो मुझको 'पकज' कहकर !

मन

आश्चर्यचकित क्यो होते हो ?
मै तुमसे परिचित हूँ,
तुमको पहचान रहा,
है ज्ञात मुझे आख्यान तुम्हारे जीवनके,
हरएक तुम्हारी धडकन
मेरी धडकन है !

पकज

सम्मुख आओ,
मै भी तुमको पहचान् लो !

मन (हल्की हँसी)
पहचानोगे ?
आश्चर्य यही,
मुझको तुम अबतक भी
न तनिक पहचान सके ।

पकज

मैं समझ नही पाता,
तुम क्या यह कहते हो ?

मन

जबसे तुमने देखा प्रकाश इस धरतीका,
जबसे चचल साँसे
गिनने लग गयी जिन्दगीकी घडियाँ,
मैं तबसे ही तो सग तुम्हारे रहता हूँ !

पकज

तुम सग हमेशा रहते हो ?

मन

हाँ, सग हमेशा रहता हूँ ।
तुम भी हो उतना निकट नही अपने मनके,
जितना मै निकट तुम्हारे
प्रतिपल रहता हूँ ।

पकज

तुम कौन ?
क्यो नही मेरे सम्मुख आते हो ?

मन

सम्मुख क्या आऊँ पकज !
मै तो सदा तुम्हारे मनमे हूँ,
मै सदा तुम्हारे अतरसे बोला करता ।

पकज

क्या कहने आये हो मुझसे ?
इस समय ? यहाँ ?

मन

मैं कहने आया हूँ पकज,
तुम कलाकार ही नही,
नही शिल्पी केवल,
तुम रक्त-मासके पुतले भी, मानव भी हो !

पंकज

तात्पर्य तुम्हारे कहनेका ?

मन

तात्पर्य स्वय सोचो, समझो ।

मैं कलाकार,
जीवनके सत्योंका द्रष्टा !
मैं देख रहा हूँ उन्हें सतत,
इसलिए कि उनको जगको भी दिखला पाऊँ,
इसलिए कि
प्रमुदित हो पाये संसार
कलाकृतियोंमें उनका बिंब देख !

मन

तुम चाह रहे हो
जगतीको प्रमुदित करना ?

पंकज

सच कहते हो,
मेरी कामना यही है,
जग यह हँस पाये।
मेरी साधना सफल होगी,
जब मेरी कला-सृष्टियोंसे
जग पाएगा उल्लास-हास !

मन

इन बातोंपर
मुझको विश्वास नहीं होता।
कामना तुम्हारी होती यदि,
जगतीको सुखी बनानेकी,
पहले तुम सुखी बनाते
अपनी पत्नीको, माँको, अपने नन्हे शिशु को !

पंकज

क्या कहते हो ?

मन

मैं सत्य कह रहा हूँ पकज !
तुम जीवनके सत्योसे आँखें फेर रहे !
तुम कहते हो,
तुम निर्मित करते हो अनुपम मूर्त्तियाँ नयी,
मैं कहता हूँ,
मूर्त्तियाँ नही,
भ्रम-सृष्टि तुम्हारी है केवल !
तुम देख रहे,
अपनी आँखोके सम्मुख नित,
नन्हा मोहन बीमार पडा है शय्यापर,
पत्नी बेचैन हो रही है !

(करुण सगीतके साथ एक स्मृति-दृश्य प्रारभ होता है)

मोहन—माँ ! माँ !

बेला—क्या है बेटा ? प्यास लगी है क्या ?

मोहन—हाँ माँ, पानी दे ।

बेला—पहले दवा पी ले बेटा, फिर पानी पीना ।

मोहन—नही माँ, मैं यह दवा नही पीऊँगा, बडी कडवी लगती है ।

बेला—दवा पीएगा, तभी तो जल्दी अच्छा हो जायगा ।

मोहन—तू रोज यही कहती है, पर मैं अच्छा नही होता । बाहर कब खेलने जाऊँगा माँ ? शाति और रामू रोज खेलते हैं ।

बेला—तुम भी खेलने जाओगे मेरे लाल ! पहले अच्छा तो हो जाओ ।

मोहन—मैं कब अच्छा होऊँगा माँ ?

बेला—अब दो-चार दिनमे ही अच्छे हो जाओगे ।

मोहन—तब तुम मुझे खानेको दोगी न ?

बेला—हाँ बेटा, मैं तुम्हारे लिए बडी अच्छी-अच्छी चीजें बनाऊँगी ।

मोहन—मैं सदेश खाऊँगा माँ, रसगुल्ले भी।

बेला—मैं तुम्हे सब कुछ दूँगी मोहन !

मोहन—तू मुझे जल्दी अच्छा कर दे माँ ! बाबूजीसे कहकर कोई अच्छी दवा मँगा देना।

बेला—बाबूजी ! (**साँस खीचकर**) बाबूजीको फुरसत नही रहती बेटा ! वे हमेशा अपने काममे लगे रहते हैं।

मोहन—मेरे लिए वे काम छोडकर जरूर दवा ला देंगे माँ !

बेला—मोहन बेटा, उनके पास पैसे भी तो कम हैं !

मोहन—इससे क्या हुआ माँ ! तू बहाना करती है। मैं कहूँगा तो, मेरे लिए वे जरूर दवा ला देंगे।

बेला—देख, वे आ ही रहे हैं।

मोहन—कहाँ है माँ ?

बेला—आ ही गये। देखिए न, मोहन कबसे आपको खोज रहा है। आपको तो अपनी मूर्त्तियोसे छुट्टी नही मिलती।

पकज (निकट आता हुआ)—क्या करूँ, थोडा-सा काम बाकी रह गया था, सोचा, पूरा ही कर लूँ। मोहनकी तबीयत कैसी है ?

बेला—आपको इसकी चिंता थोडे ही है ?

पकज—चिंता क्यो नही है ? लेकिन काममे इस तरह उलझ जाता हूँ कि कुछ याद ही नही रहता। और, मूर्त्तियाँ बेकार तो नही बना रहा हूँ, उनसे पैसे भी तो मिलेंगे।

बेला—पैसे क्या खाक मिलेंगे ! मूर्त्तियोके प्रेमी कितने हैं ?

पकज—हैं क्यो नही ? दुनियामें अनेक कला-पारखी हैं।

बेला—साल दो सालमे कोई दो मूर्त्तियाँ खरीद ही लेगा, तो क्या इसीसे जिन्दगी चलेगी ? मैं कबसे कहती हूँ, कोई दूसरा काम कर लो।

पंकज—नही बेला, मुझसे दूसरा काम न होगा।

मोहन—बाबूजी !

पंकज—क्या है बेटा ?

मोहन—मुझे जल्दी अच्छा कर दीजिए बाबूजी ! मैं खेलने जाऊँगा !

पंकज—तू अच्छा हो जाएगा मोहन !

मोहन—आपने यह बड़ी कड़वी दवा ला दी है, मैं इसे नहीं पीऊँगा। आप कोई अच्छी दवा ला दीजिए।

पंकज—अच्छी दवा ? ला दूँगा बेटा ! तू जल्दी अच्छा हो जाएगा !

(स्मृति-दृश्य समाप्त)

मन (जोरकी हँसी)

तुम कलाकार हो, शिल्पी हो !
तुम चाह रहे
उल्लास-हाससे भर देना इस जगतीको।
लेकिन अपने नन्हे शिशु,
अपनी पत्नीको
तुम तनिक न प्रमुदित कर पाते !

पंकज

सच कहते हो।
विक्षुब्ध, विकल हो उठता हूँ
मैं उन्हे देख !
मेरे अंतरके तार-तार बज उठते है,
बह चलती है आँखोसे करुणाकी धारा !
लेकिन क्या करूँ,
विवश हूँ मैं !
ये पत्थर माँग रहे मुझसे आकार नये !
आकृतियाँ माँग रही मुझसे जीवन-स्पन्दन !
मैं कलाकार,
इनको निराश कैसे कर दूँ ?

(मूर्ति गढ़ने की आवाज)

मन

लगता मुझको,
विक्षिप्त हो गये हो पागल !
पाषाणोकी वाणी तुम सुनते हो प्रतिक्षण,
लेकिन मोहनकी कातर ध्वनि
अतरतक तनिक तुम्हारे नही पहुँच पाती ?

पकज

मुझको अशात मत करो अधिक !
उनकी स्मृतियोको सोने दो ओ मेरे मन !
मेरे अतरको ओर न अधिक कुरेदो तुम !
मैं शिल्पी हूँ,
गढ रहा मूर्त्तियाँ जगके हित,
मेरी साधना न भग करो
इन बातो से।

मन (हँसते हुए)

साधना !
साधना इसे तुम कहते हो !
तुम पागल हो !
तुम भाग रहे हो जीवनके सघर्षोसे !
पाषाणोके सँग जूझ-जूझ
पाषाण हो गये हो तुम भी !

पकज (आश्चर्य से)

क्या कहते हो ?
पाषाण हो गया हूँ मैं भी ?
तुम निष्ठुर हो,
तुम अतरकी धडकन न तनिक हो सुन पाते।
देखो, मेरे उरमे

आकाक्षाएँ है जाग रही कितनी,
मेरी पलकोमे सपने उमड रहे कितने ।
मेरी साँसे जगकी
मगल-कामना किया करती सदैव ।
तुम कैसे कहते हो,
मै भी पापाण हो गया हूँ
इन पापाणोके सँग ?
मेरे उरमें तो जाग रही
जीवन-विद्युत् इतनी सशक्त,
जो पापाणोको भी
नवजीवन देती है,
चेतना नयी उनके प्राणोमे भरती है ।

मन

आश्चर्य यही तो
होता है मुझको पकज ।
तुम कहते हो,
कैसे निराश कर दू मै इन पापाणोको ?
लेकिन निराश करते अपनी प्रिय बेला को
तुमको न तनिक लज्जा आती ।
है याद,
कौन-सी आशाएँ थी
जाग उठी उसके मनमें ?

(मधुर वाद्य-सगीतसे स्मृति-दृश्य प्रारभ होता है)

बेला—(हल्की हँसी)

पकज—बडी खुश हो बेला ।

बेला—मैं खुश न होऊँ, तो दूसरा कौन होगा ?

पकज—आखिर बात क्या है ?

बेला——मुझसे खुशीकी बात पूछ रहे हो ? आज मुझसे सुखी दूसरी कौन नारी होगी !

पंकज——क्यों ?

बेला——"क्यों" का जवाब मैं नहीं देती ।

पंकज——जरा सुनूँ भी ।

बेला——तुम्हारे-जैसा कलाकार तो खुद समझ जाएगा ।

पंकज——कलाकारकी पत्नी कह दें, तो अच्छी बात न होगी ?

बेला——तुम तो मुझे चिढ़ाने लगते हो । तुम्हीं बतला दो तो कैसा हो ?

पंकज——नहीं बेला, मैं पहेली बूझना नहीं जानता । मैं तो मूर्त्ति गढ़ना जानता हूँ, पत्थरकी मूर्त्ति !

बेला——एक मेरी मूर्ति नहीं बना दोगे ?

पंकज——तुम तो मेरी कलाकी प्रेरणा हो ! अपनी प्रत्येक मूर्त्तिमें मैं तुम्हारी ही आत्माका संगीत भरता हूँ ! मैं कितना प्रसन्न हूँ, तुम्हारी जैसी जीवन-संगिनी पाकर !

बेला——यह तो तुम उल्टी बात कहते हो ।

पंकज——उल्टी बात कहता हूँ ?

बेला——और नहीं तो क्या ? खुश तो मैं हूँ कि तुम्हारे-जैसे कलाकार-की पत्नी हूँ !

पंकज——पगली ! (हल्की हँसी)

बेला——हँसते क्यों हो ? मैं झूठ कहती हूँ ?

पंकज——झूठ क्यों कहोगी बेला ! लेकिन मैं सोच रहा हूँ कि क्या तुम हमेशा सुखी रह सकोगी ?

बेला——मैं तुमसे ऐसी बातें नहीं सुनना चाहती । मेरा मन आशंकित हो उठता है । मैं तुम्हारे साथ हमेशा सुखी रहूँगी !

पंकज——तुम मेरी बात नहीं समझी !

बेला——मैं समझती हूँ । तुम कलाकार हो, शिल्पी हो ! मुझे तुम्हारी

प्रतिभापर, तुम्हारी शक्तिपर विश्वास है। मैं जानती हूँ, तुम मुझे दुखी नही होने दोगे।

पंकज—हाँ बेला, मै तुम्हे दुखी नही होने दूँगा। तुम्हारे होठोकी मुस्कानके लिए मैं सब कुछ करूँगा।

बेला—तुम कितने अच्छे हो!

(स्मृति-दृश्य समाप्त)

मन—(जोरकी हँसी)

तुम कितने अच्छे हो पंकज! (हँसी)

पंकज

तुम हँसने आये हो मुझपर?

मन

मै हँसने नही यहाँ आया,

(व्यग्यसे)

यह तुमसे कहने आया हूँ,
तुमने अपनी बेलाको सुखी बनाया है!
मुस्कान अधरपर खिलती रहती है उसके,
आँखे उसकी मुस्काती हैं,
हो सुख विभोर,
उल्लास-हासके गीत सदा वह गाती है!
तुम कितने अच्छे हो पंकज! (हँसी)

पंकज

मैं कहता हूँ,
मुझपर न हँसो अब और अधिक,
ओ मेरे मन!

मन

मैं हँसता नही तनिक तुमपर!
कुछ बीती बाते याद करा देता हूँ बस!
उन मधु-दिवसोकी स्मृतियाँ,

जीवनमें हँसी-खुशी तब आकर लहराती,
बेला मुस्काती,
मोहन किलकारी भरता,
साधोकी कलियाँ खिल जाती !
कितना सुन्दर लगता यह जग !

पंकज

रहने दो अब
ओ मेरे मन !
तुम दुनियाको रंगीन बना
साधना-भ्रष्ट मुझको यों करने आये हो !
लेकिन मैं अपने पथसे भ्रष्ट नहीं हूँगा !
है मुझे ज्ञात,
इस दुनियाकी यह चमक-दमक,
यह रंगीनी,
सब नश्वर है, है क्षणिक, तुरत मिट जाएँगी !
मैं नश्वरताके लिए
अमरताको न कभी भी खो सकता !

मन

यह बात अमरताकी
तुमने कैसी छेड़ी ?

पंकज

ओ मेरे मन,
तुम अंधे हो,
तुम समझ न पाओगे सब कुछ !

मन

पत्थरके प्रेमी,
ज़रा मुझे समझाओ भी !

पकज

जो रग दिखाते हो मुझको
इस दुनियाके,
वे सबके सब धुल जाएँगे।
बेला न रहेगी,
रह न सकेगा मोहन भी,
औ, कलाकार पकजकी
नश्वर देह कभी मिट जाएगी।
मिट जाएगे,
जगके वैभव-ऐश्वर्य सभी।
मिट जाएगी
दुनियाकी सारी चमक-दमक।
लेकिन यह अनुपम कला-सृष्टि
जगके ध्वसोपर भी सदैव मुस्काएगी!
युग-युग तक कलाकार पकजकी
गौरव-गाथा गाएगी।
सब मिट जाएँगे,
वर्त्तमानके प्राणी हैं,
लेकिन यह मेरा कलाकार
है तोड रहा इस वर्त्तमानकी सीमाएँ
छेनीके निष्ठुर, निर्मम कुछ आघातोसे।
आनेवाली सदियोमे भी
यह कभी न मिटनेवाला है।
यह गौरव देख रहे हो तुम?
देखो भी तो।

(वाद्य-सगीतसे नया स्मृति-दृश्य प्रारंभ होता है। बहुतसे लोगोंके जमीन खोदनेकी आवाज सुनायी पड़ती है।)

आदमी १—अरे भई, इतने जोरसे कुदाल न चलाओ।

आदमी २—क्यो ?

आदमी १—कही ऐसा न हो कि जिन मूर्त्तियोकी खोजमें हम मिहनत कर रहे है, वे हमारी कुदालकी ही चोटसे टूट जायँ।

आदमी २—हाँ, अभी-अभी तो यह छोटी-सी पत्थरकी मूर्त्ति मिली है।

आदमी १—इसीलिए तो कहता हूँ कि बडी मूर्त्तियाँ भी शीघ्र ही मिलेगी। अच्छा, जल्दी-जल्दी काम करो।

(कुदाल और फावडे चलानेकी आवाज)

आदमी २—यह देखिए, एक नयी मूर्त्ति यह निकली।

आदमी १—कितनी सुन्दर है। मै कहता हूँ, अभी और मूर्त्तियाँ निकलेगी। काम करो।

(कुदाल और फावड़े चलानेकी आवाज)

आदमी २—यह देखिए—एक नयी मूर्त्ति और निकली।

(कुदाल और फावडे चलानेकी आवाज)

आदमी २—एक मूर्त्ति और!

आदमी १—इतनी मूर्त्तियाँ। कलाका अनुपम भडार पा लिया हमने। कितनी सुन्दर है ये।

आदमी २—इनकी कला तो देखिए। इनकी एक-एक रेखा बोल रही है। ये कितनी सजीव लगती है।

आदमी १—किसकी बनायी हुई है ?

आदमी २—नाम तो इस मूर्त्तिके नीचे खुदा हुआ है।

आदमी १—क्या नाम है ?

आदमी २—मर्त्तिकार पकज।

आदमी १—मर्त्तिकार पकज। तुम हमारी श्रद्धाके पात्र हो। हम तुम्हारे चरणोपर अपनी श्रद्धाजलियाँ अर्पित करते है।

आदमी २—आश्चर्य है कि हम ऐसे महान् कलाकारके विपयमे कुछ नही जानते थे। पता नही, यह किस युगका कलाकार है।

आदमी १—मूर्त्तियोपर सन्-सवत्का उल्लेख तो अवश्य होगा !

आदमी २—होना तो चाहिए ।

आदमी १—जरा गौरसे देखो ।

आदमी २—देख रहा हूँ । (जरा ठहरकर) यह तो किसी सन्का ही उल्लेख है ।

आदमी १—पढो भी तो ।

आदमी २—उन्नीस सौ पचास ।

आदमी १—तो, इसमे सदेह नही कि मूर्त्तिकार पकज बीसवी सदीके पूर्वार्द्धमे रहा होगा ।

आदमी २—उसकी कला गजबकी है ! आज इतनी सदियोके बाद भी उसकी मूर्त्तियोमे इतनी शक्ति है कि ये हमारे मनको गुद-गुदा सकें !

आदमी १—सचमुच वह महान् कलाकार था !

आदमी २—ये मूर्त्तियाँ हमारे गौरवकी वस्तु हैं !

आदमी १—इन्हे हम अपने म्यूजियममे ले चले !

आदमी २—हा-हाँ, हमे इनका सरक्षण करना चाहिए ।

मन (जोर की हँसी)

पकज

क्यो हँसते हो
ओ मेरे मन ?

मन

पागल सपने छल रहे तुम्हे !

पकज

पागल सपने ?

मन

मै ऐसे सपनोको
पागल ही कहता हूँ ।
ये निष्ठुर होकर छीन रहे हैं

तुमसे मधुमय वर्त्तमान !
अमरत्व प्राप्त करनेके हित
तुम दौड रहे हो अधो-से अपने पथ पर ।

पकज

क्या कहते हो ?
मै दौड रहा हूँ अधो-सा ?

मन

तुम देख नही पाते
जीवनके सपनोको,
जो वर्त्तमानकी धरतीपर
सामने तुम्हारे बिखरे है ।
तुम कहते हो,
ये वर्त्तमानके सुख-वैभव
सब नश्वर है,
चाहिए तुम्हे अमरत्व कही ।
मै कहता हूँ,
तुम भ्रममे हो ।
तुम खोज रहे अमरत्व यहाँ,
वह भी नश्वर, क्षण-भगुर है !

पकज

वह भी क्षण-भगुर है कैसे ?

मन

तुम देख नही पाते उसको ?
तुम कहते हो,
बेला, मोहन मिट जाएँगे,
इस दुनियाके चमकीले रग धुल जाएँगे,
दस वर्षोमे सब चमक-दमक होगी मलीन !

तुम अमर रहोगे
इन्ही मूर्त्तियोमें छिपकर !
मैं कहता हूँ,
ये कला-सृष्टियाँ भी
खंडित हो जाएँगी !

पंकज

कैसे खंडित होगी,
मैं समझ नही पाता !

मन (हँसी)

तुम समझोगे इसको कैसे ?
भ्रमका आवरण
तुम्हारी आँखोपर छाया ।
क्या देख नही सकते
कि कभी तूफान-बवडर आएँगे,
धरती डोलेगी,
आसमान थर्राएगा ?

(आँधी, तूफान, भूकंप आदिकी भयकर ध्वनियाँ दूरसे धीरे-धीरे उठकर तेज हो जाती है। बहुत-से लोगोंकी आवाजें सुनायी पड़ती हैं 'भागो, भागो' 'जान बचाओ' आदि)

पुरुष-स्वर १—अरे राकेश, तुम यही खड़े हो ?

पुरुष-स्वर २—और क्या करूँ ?

पुरुष-स्वर १—भागते क्यो नही ?

पुरुष-स्वर २—भागकर कहाँ जाऊँ ? देखते नही ? समूची धरती डोल रही है, आकाश फट रहा है, काले-काले बादल उमडे आ रहे हैं, आँधियाँ बढती आ रही हैं, तूफान उत्पात मचा रहे हैं ! मालूम होता है, प्रलय आकर ही रहेगा ।

पुरुष-स्वर १—तुम भी गजबके आदमी हो ! यों खडे-खडे प्रलयकी बाते सोच रहे हो !

पुरुष-स्वर २—जो सामने देख रहा हूँ, उसे सोच रहा हूँ। ये बडे-बडे आलीशान महल गिरकर चूर-चूर हो रहे हैं, धरती फट रही है, सभी ढह रहे हैं, ढह रहे हैं, आह !

(आवाज तेज होकर धाम होती है)

मन (अट्टहास)

कलाकार पकजकी
सब मूर्त्तियाँ ध्वस्त हो जाएँगी ! (हँसी)

पकज

इतना न हँसो ओ मेरे मन !
मैं पागल हो जाऊँगा सचमुच इन्हे सोच !

मन (हँसी)

मै क्यो न हँसूँ ?
तुम खोज रहे अमरत्व यहाँ !
अमरत्व भला इस धरतीपर
मिल पाता है ?
धरतीपर सब कुछ नश्वर है,
क्षणभगुर है,
आशकामे जीवनका
प्रतिक्षण कपित है !
तूफान-बवडर
उल्का-झझावातोका भय तो है ही,
सभव है,
जगके भले आदमी,
शाति चाहनेवाले नर
कुछ ऐटम बम भी बरसा दे !

(बहुत-से हवाई जहाजोकी आवाज। विस्फोट, आह-चीत्कार आदिकी ध्वनियाँ)

मन (अट्टहास)

तब कलाकार पकजकी
ये मूर्त्तियाँ कही बच पाएँगी ? (हँसी)
अमरत्व चाहनेवाले भावुक कलाकार ! (हँसी)

पंकज

बस !
रहने दो, रहने दो,
हँसो न और अधिक
ओ मेरे मन !
सच कहते हो,
अमरत्व नही इस धरती पर !
भ्रम है, सब मिथ्या है !
मेरी साधना, कला-कौशल,
सब निष्फल हैं !
मेरी मूर्त्तियाँ सभी
खडित हो जाएगी !
मै रचकर इन्हें करूँगा क्या ?
प्रतिमे, तुझको मिटना ही है,
तो बनकर भला करेगी क्या ?
(पत्थर पर जोरसे हथौड़ा मारनेकी आवाज)

पंकज

आह !
मैंने यह क्या कर दिया आज ?
मेरी यह अनुपम कला-सृष्टि
हो गयी नष्ट मेरे हाथो !
मैं पागल हूँ,
मैं उलझ रहा हूँ, जाने क्यो,
अपने मनसे !
मैने अपनी प्रतिमा
खडित कर दी पलमे !
यह प्रतिमा, मेरी कला-सृष्टि !
जिसके रचनेमे
मुझे आत्म-सुख मिलता था,
सतोष हृदयको होता था !
मैं फिरसे कोई मूर्त्ति रचूँगा मनमोहक,
पत्थरमे ज्योति जगाऊँगा !
(वाद्य संगीतसे समाप्ति)

वे अभी भी क्वाँरी हैं !

(वाद्य सगीतसे दृश्य प्रारम्भ)

रेखा—रात बीत रही है माधव !

माधव—मेरी आँखोमे नीद नही है।

रेखा—मैं कहती हूँ, अब सो जाओ।

माधव—नही रेखा, अभी मै नही सो सकता।

रेखा—न मालूम, तुम्हे कभी-कभी क्या हो जाता है।

माधव—हो क्या जाता है, यो ही कुछ सोचने लगता हूँ।

रेखा—मैं भी तो सुनू, क्या सोच रहे हो !

माधव—तुम्हे क्या बतलाऊँ ?

रेखा—क्यो, मेरे जानने योग्य नही है ?

माधव—नही रेखा, जानने योग्य क्यो नही है, लेकिन मेरा मन कुछ अशात-सा है।

रेखा—यही तो जानना चाहती हूँ कि इस शातिकी वेलामें तुम अशात क्यो हो ?

माधव—अशात ! (हल्की हँसी) मै कालिदासके 'अभिज्ञानशाकुतलम्'की बात सोच रहा हूँ रेखा !

रेखा—तो इसमे अशात होनेकी क्या बात है ?

माधव—अशात होनेकी बात नही है ?

रेखा—(हल्की हँसी) कवि और कलाकार सचमुच पागल होते हैं, यह बात तो तुम्हें देखकर ही मान गयी हूँ माधव !

माधव—मै पागल हूँ ? कालिदास पागल थे ! अन्यायी !

रेखा—तुम्हे क्या हो गया है माधव ?

माधव—कुछ नही, कुछ नही। आज मै विश्वकवि रवीन्द्रनाथ

ठाकुरका एक निबंध पढ़ रहा था। उसकी पंक्तियाँ अभी भी मेरे कानोमे गूँज रही हैं। सुनती हो ?

रेखा—नही माधव!

माधव—वाह! यह गूँजती हुई आवाज तुम नही सुनती ?

स्वर—संस्कृत-काव्योमें दो तपस्विनियाँ और हैं, जो हृदयको तपोवन बनाकर उसमें निवास करती है। वे हैं प्रियवदा और अनुसूया। पतिगृह-गामिनी शकुन्तलाको विदा करके वे रोती-रोती लौट आयी। नाटकमे फिर उनका प्रवेश नही देखा गया, उन्होने फिर हमारे हृदयोमे ही आसन जमा लिया!

माधव—सुनती हो रेखा ?

रेखा—क्या सुना रहे हो माधव ? मै तो कुछ भी नही सुनती।

माधव—कुछ भी नही सुनती ? सुनो भी तो!

स्वर—शकुन्तलाके पतिगृह-गमनके बाद प्रियवदा और अनुसूयाका क्या हुआ, यह बात शकुन्तला नाटकके लिए बिल्कुल ही अनावश्यक है, किन्तु क्या इसीलिए वह अकथित और अपरिमेय वेदना वहीपर शान्त हो गयी ? क्या वह हमारे हृदयमे बिना छन्द और बिना भाषाके ही सदा जाग्रत नही रहने लगी ?

माधव—यहीं तो मैं भी कह रहा हूँ रेखा!

रेखा—क्या कह रहे हो तुम ? मुझे तो कुछ मालूम ही नही होता।

माधव—हुँह, तुम्हें क्या मालूम होगा ?

रेखा—तुम्ही रातभर मालूम करते रहो! मुझे तो नीद आ रही है। मैं सो रही हूँ।

माधव—अच्छा रेखा, सो जाओ, मेरा भी मन जब शान्त होगा, सो जाऊँगा। (क्षणिक शांति के बाद) क्यो रेखा, सो गयी ? कालिदासने प्रियवदा और अनुसूयाके प्रति सचमुच अन्याय किया है—अन्याय!

(धीरे-धीरे उठता हुआ स्वप्न-सूचक संगीत)

कल्पना—कलाकार माधव! कलाकार!

माधव—कौन हो तुम ?

कल्पना—मैं ? इससे तुम्हे क्या मतलब ?

माधव—तो, तुम मुझे पुकार क्यो रही हो ?

कल्पना—तुम्हे शान्ति देनेके लिए।

माधव—शान्ति ?

कल्पना—हाँ-हाँ, तुम अशान्त हो न ? मैं तुम्हें शान्ति देना चाहती हूँ।

माधव—शान्ति दोगी ? कैसे ?

कल्पना—कैसे क्या बतलाऊँ ? तुम शान्ति नही चाहते हो क्या ?

माधव—चाहता क्यो नही ?

कल्पना—तो, आओ। शीघ्रता करो। मेरे साथ चलो। उठो। उड चलो। पीछे लौट चलो।

(शून्यमें उडनेकी आवाज)

स्वर—१९००-१८७५-१८५७

(भीडकी आवाज)

कुँवरसिंह—यह विद्रोहका झडा खडा रहे, गिरने न पाये, जीत हमारी होगी।

स्वर—१८५०-१८३५-१८००-१७६०

बिहारी—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसहु सदा बिहारीलाल ॥

कल्पना—बढते चलो कलाकार !

माधव—आ रहा हूँ देवि !

स्वर—१७२०-१७००-१६८८

तुलसी—सिया राममय सब जग जानी।
करौ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

कल्पना—माधव, और आगे बढो।

माधव—बढ रहा हूँ ! क्या कहूँ, तुम्हे ?

कल्पना—कल्पना !

माधव—कल्पना !

स्वर—९९०-८८०-४००-३००

माधव—और कहाँ कल्पना ?

कल्पना—और नहीं कलाकार ! मैं तुम्हे शीघ्र ही रुकनेको कहूँगी।

माधव—वह कौन है वहाँ—उस पर्वत पर ?

कल्पना—वह यक्ष है, कालिदासका विरही यक्ष !

माधव—आषाढके मेघ आकाशमें घिर रहे हैं, यक्ष व्याकुल हो रहा है कल्पना ! चलो न वहीं।

कल्पना—नहीं माधव, मैं तुम्हे यक्षके पास नहीं, प्रियवदा और अनुसूयाके पास ले जाऊँगी।

माधव—कहाँ हैं वे ?

कल्पना—उन्हे ही तो देख रही हूँ। आगे बढ़ो ! वह देखो, वहाँ, उस कुंजमें !

माधव—तो, चलो न वहीं।

कल्पना—नहीं माधव, मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।

माधव—तब ?

कल्पना—तब क्या ? तुम चले जाओ। फिर लौटकर आना, तो साथ चलेंगे।

माधव—तुम क्यो नहीं चलती ?

कल्पना—मैं कहती हूँ, तुम जाओ, देर न करो। इच्छा होगी, चली आऊँगी।

(वाद्य संगीतसे दृश्य-परिवर्तन)

(चिड़ियोंकी चहचहाहट आदिकी आवाज)

प्रियवदा—(निकट आती हुई) अनुसूया ! अनुसूया ! अरी पगली, मैं तुम्हें कबसे पुकार रही हूँ, तुम्हें कुछ सुनायी ही नहीं पड़ता ?

अनुसूया—सचमुच मुझे पुकार रही थी ?

प्रिय०—तुम्हें सुनायी दे, तब तो। कर क्या रही हो ?

अनु०—यही एक चित्र बना रही हूँ प्रियवदा !

प्रिय०—तुम्हारा तो मन चित्र ही मे लगता है। देखूँ, किसका चित्र है ?

अनु०—देखो न, यही तो हे।

प्रिय०—यह तो किसी राजकुमारका चित्र है।

अनु०—हाँ प्रियवदा !

प्रिय०—बडा सुन्दर है ! इसकी आँखोसे कितनी मादकता बरस रही है !

अनु०—हाँ सखी !

प्रिय०—कैसे बनाया तुमने ? कही इस राजकुमारको देखा है क्या ?

अनु०—नही प्रियवदा, जहाँ तुम हो, वहाँ मैं। देखूगी कहाँसे ? महाराज दुष्यतके बाद इस उपवनमे दूसरा कोई राजकुमार आया ही कहाँ ?

प्रिय०—हाँ अनुसूया, सच कहती हो। देखते-देखते आँखें थक गयी, लेकिन इस उपवनमें कोई राजकुमार नही आया। मन करता है,

अनु०—क्या मन करता है सखी ?

प्रिय०—यही कि महाराज दुष्यत-जैसा ही कोई राजपुरुष हमारा अतिथि होता, तो हम उसका कितना सत्कार करती !

अनु०—लेकिन कोई अतिथि हुआ तो नही।

प्रिय०—यही तो सोचती हूँ अनुसूया, तुम कितनी भाग्यशालिनी हो !

अनु०—मैं ? भाग्यशालिनी हूँ ? (हल्की हँसी)

प्रिय०—भाग्यशालिनी तो हो ही ! अपनी कल्पनाके ससारमें कभी किसी महाराजको, कभी किसी राजकुमारको बुला लेती हो, और उसे अपने चित्रपटपर उतार देती हो !

अनु०—यह तो चित्रकलाकी महिमा है प्रियवदा !

प्रिय०—तुम्हारी चित्रकलाकी निपुणता मै अभी भी नही भूली हूँ।

तुमने शकुन्तलाके निद्राके समय अपनी चित्रशालाके बलपर ही उसे राजकीय वस्त्र पहनाये थे।

अनु०—हां सखी, उन दिनोकी याद न दिलाओ। वे तो सपने-जैसे बीत गये, फिर लौटकर आनेवाले नही हैं!

प्रिय०—हा अनुसूया, मैं भी यही सोचती हूँ, वे दिन फिर एक बार आ पाते!

अनु०—मेरे मनमे भी उन दिनोकी स्मृतियाँ मचल रही हैं प्रियवदा! उस दिन शकुन्तलाके मुखपर एक भौरा मँडरा रहा था, और उसी समय महाराज दुष्यत उपवनमे चले आये।

प्रिय०—मै तो उस भौरेको कबसे खोज रही हूं सखी! एक बार मेरे मुखपर भी मँडराता!

अनु०—लेकिन,

प्रिय०—लेकिन क्या, कुछ नही! लताओको देखा, फूलोके निकट गयी, लेकिन वह भौरा कहीं न मिला!

अनु०—इन कल्पनाओसे लाभ ही क्या है प्रियवदा?

प्रिय०—हाँ सखी, ये कल्पनाएँ स्वप्न हैं, छलना हैं, इनमे उलझनेसे कोई लाभ नही। और, मैं भी कैसी बेसुध हूँ, क्या कहने आयी थी, क्या कहने लग गयी!

अनु०—क्या कहने आयी थी प्रियवदा?

प्रिय०—यही कि उठो, घडा उठाओ, लताओ और वृक्षोको सींचनेका समय हो गया।

अनु०—जरा यह चित्र पूरा न कर लूँ?

प्रिय०—नही अनुसूया, शीघ्र उठो, पिता कण्व आयेंगे, तो क्या कहेगे? और, यह माधवी लता हमारे स्नेह ही पर तो जीवित है। याद है न, शकुन्तला इसे हमे ही सौप गयी थी!

अनु०—याद है सखी!

प्रिय०—लेकिन जाने दो अनुसूया ! चलो, बीती बातोको याद करनेसे क्या ?

अनु०—हाँ सखी, चलो, देखो न, माधवी लता हमें बुला रही है।

प्रिय०—उठाओ घडा।

(क्षणिक शान्ति, फिर पानी गिरनेकी आवाज)

अनु०—प्रियवदा, उस झुरमुटसे खडखडाहट कैसी हो रही है ?

प्रिय०—कोई मृग होगा। अच्छा सखी, मेरी वल्कलकी कचुकी जरा ढीली कर दे न !

अनु०—मै क्या इसीलिए हूँ ? कभी शकुतलाकी कचुकी ढीली की थी, आज तुम्हारी कर द्‌ ? अच्छा !

प्रिय०—देखो सखी, कोई आ रहा है क्या ?

अनु०—यह तो मै पहले ही कह रही थी।

प्रिय०—शायद कोई अतिथि है।

अनु०—सकोचसे आगे नही बढ रहा है। बुला लो।

प्रिय०—आइए, चले आइए। कौन है आप ? क्या सत्कार करे आपका ?

अनु०—आप बोलते क्यो नही ? आज्ञा दीजिए, आपकी क्या सेवा की जाय ?

माधव—कुछ नही देवि, कुछ नही ! मुझे सेवा नही चाहिए। मैं केवल आपके दर्शन चाहता था।

प्रिय०—दर्शन ?

माधव—हाँ देवि, तुम्हे देखने हीके लिए कालकी लम्बी दूरी पारकर चला आ रहा हूँ।

अनु०—अहो भाग्य हमारे ! हमारे प्रति अभी भी किसीके हृदयमें स्निग्ध भावनाएँ हैं ? किसीके मनमे हमे देखनेकी आकाक्षा भी उठती है ?

माधव—क्यो नही अनुसूया ?

अनु०—अनुसूया ? तुमने हमारा नाम कैसे जान लिया अतिथि ?

माधव—क्षमा करो देवि, मै कबसे यही झुरमुटमे खडा तुम्हे देख रहा था, तुम्हारी बाते सुन रहा था !

प्रिय०—शायद तुम प्रतीक्षा कर रहे थे कि कोई भौरा हमारे मुखपर उड-उडकर हमे सताये, तब तुम हमारी रक्षाके लिए प्रकट हो !

माधव—नही देवि, मैं तुम्हे यो ही देख रहा था। न जाने क्यो, तुम्हे देखकर मेरे मनमे एक कैसी करुण रागिनी बजने लगती है, मेरे तार-तार झकृत हो जाते हैं !

अनु०—अरे, तुम अभी खडे ही हो ? बैठो अतिथि, आसन ग्रहण करो। प्रियवदा, जा, कुटीसे कुछ फल-फूल ले आ।

माधव—नही प्रियवदा, इस सत्कारकी कोई आवश्यकता नही। मैं तुम्हारे दर्शनसे ही तृप्त हो गया।

प्रिय०—तो आओ अतिथि, इस कदलीपत्रके आसनको सुशोभित करो।

माधव—यह स्थान तो शायद वही है, जहाँ दुष्यन्त बैठे थे ?

अनु०—हाँ अतिथि, यह तभीसे सूना है।

माधव—लेकिन अनुसूया, मैं महाराज दुष्यन्तके आसनपर बैठने योग्य नही हूँ !

अनु०—ऐसा न कहो अतिथि, हम तो तुम्हे उन्हीके-जैसा समझती है।

प्रिय०—हाँ अतिथि, हम तुम्हें अतिथि कब तक कहें ?

माधव—लोग मुझे माधव कहते हैं।

प्रिय०—माधव !

अनु०—नाम तो बडा सुन्दर है !

प्रिय०—तुम्हे देखकर हमें लगता है, जैसे हमारे जीवन-काननमे भूल-भटककर सचमुच माधव चला आया हो !

माधव—तुम क्या कहती हो प्रियवदा ?

अनु०—प्रियवदा सच कहती है माधव ! तुम्हे देखकर मुझे इतना

आनन्द होता है कि क्या कहूँ। लगता है, जैसे कोई भूली बात याद आ गयी हो।

माधव—तुम कितनी भावुक हो अनुसूया।

अनु०—भावुक! (हल्की हँसी) लेकिन प्रसन्नता है कि तुमने मेरे अन्तरमें मचलती हुई भावनाओको पहचान लिया। तुम कितने सहृदय हो।

माधव—मै कवि हूँ अनुसूया।

प्रिय०—यह क्या कहा तुमने?

माधव—यही तो कि मै कवि हूँ। क्यो? तुम्हारे मुखपर यह गहरी छाया कैसे घिर आयी? तुम आशंकित क्यो हो गयी?

प्रिय०—हमे कवियोसे भय लगता है माधव।

अनु०—वे बडे निष्ठुर होते हैं!

माधव—यह क्या कह रही हो तुम?

प्रिय०—सच कह रही हूँ माधव।

अनु०—सुनी-सुनायी बात नही, अनुभवका सत्य है।

प्रिय०—कालिदास कवि थे।

अनु०—कवि ही नही, महाकवि थे।

प्रिय०—और, उन्होने कितनी निष्ठुरता की है।

अनु०—हमे शाप दिया है।

प्रिय०—निष्ठुर शाप।

अनु०—दुर्वासाके शापसे भी कठिन।

प्रिय०—दुर्वासाने शकुन्तलाको शाप दिया था, शकुन्तला शापमुक्त हो गयी।

अनु०—लेकिन कालिदासका शाप आज भी हमारे शीशपर मँडरा रहा है।

माधव—कौन-से शापके विषयमे कह रही हो अनुसूया?

अनु०—नही देखते माधव ? वह देखो, आश्रमके चारो ओर महा-
शापकी काली रेखा खिची हुई है ।

माधव—कैसी रेखा ? मै तो नही देखता ।

प्रिय०—नही देखते ? तुम भी कवि हो न ?

माधव—यह क्या प्रियवदा ?

प्रिय०—कालिदास निष्ठुर थे, उन्होने हमारी आशा-आकाक्षाओपर
अग्निवर्षा की है !

अनु०—हमारी कोमल भावनाओकी कलियोको अपने निष्ठुर हाथोसे
मसल दिया है उन्होने !

माधव—हाँ, यह तुम सच कह रही हो । मैं भी यही कहता हूँ ।

प्रिय०—हाँ, तुम सहृदय हो, सरल हो ! हमारी आशाओके मूर्त्त-
मान रूप हो !

अनु०—हाँ माधव, कालिदास निष्ठुर थे, लेकिन सब तो एक से नही
होते । तुम कितने सुन्दर हो ! कितने सरल ! कितने सहृदय !

माधव—तुम्हारे स्नेहकी वर्षामे मै भीगा जा रहा हूं । लेकिन, लेकिन
इतनी वर्षा उचित नही है, उचित नही है अनुसूया !

अनु०—उचित नही है ! उचित क्या है ? अनुचित क्या है ? कुछ
नही, कुछ नही !

प्रिय०—तुम कितने सरल हो माधव ! तुम निष्ठुर नही हो सकते !
मै जानती हूँ, तुम हमे मुक्त करने आये हो, कालिदासके
शापसे मुक्त करने !

अन०—मै जानती हूँ, तुम हमे इस आश्रमसे मुक्त करने आये हो !
तुम हमे इस आश्रमसे, इस बदीगृहसे बाहर ले चलोगे, हमारी
आशा-आकाक्षाओपर, हमारे स्वप्नोपर मधुकी वर्षा करोगे !

माधव—बोलो अनुसूया, मै क्या करूँ ? कुछ समझ नही पाता ।
प्रियवदा, बोलो ।

प्रिय०—तुम कवि हो, सहृदय हो, तुम स्वय समझते हो, मै क्या कहूँ ?

अनु०—हमें इस बंदीगृहसे बाहर पहुँचा दो माधव ! यहाँ हमारी इच्छाएँ घुट-घुटकर मिटती जाती हैं !

प्रिय०—शीघ्रता करो माधव !

माधव—क्या करूँ मैं ?

अनु०—ले चलो, हमें यहाँसे बाहर ले चलो, राजनगरमे !

प्रिय०—तुम सोच क्या रहे हो ? सोचनेका समय नही !

माधव—तो, चलो, लेकिन कोई पुकार रहा है क्या ?

प्रिय०—शायद पिता कण्व हैं !

अनु०—क्या कह रहे हैं वे ?

बहुत-से स्वर—(गूँजती हुई तेज आवाज में) ये क्वाँरी हैं, इनका नगरमे जाना उचित नही है ! ये क्वाँरी हैं, इनका नगरमे जाना उचित नही है ! ये क्वाँरी हैं, इनका नगरमें जाना उचित नही है ! ये क्वाँरी हैं, इनका नगरमे जाना उचित नही है !

(तीव्र वाद्य संगीतसे समाप्ति)